VISHWA - Hindi Literary Magazine

PRINTED VISHWA - ISSN 25721550
ONLINE e-VISHWA - ISSN 25721569

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association

JULY 2026

विश्वा

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की त्रैमासिक मुख पत्रिका

वर्ष 42 ◆ अंक 3 ◆ जुलाई 2026

विभिन्न शाखाओं द्वारा आयोजित कार्यक्रम

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की त्रैमासिक मुख पत्रिका

विश्वा

प्रकाशन त्रैमासिक – जनवरी, अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर
Published Quarterly – January, April, July, October

प्रबन्ध सम्पादक - **श्री आलोक मिश्रा**
Managing Editor - **Mr. Alok Misra**
New Hampshire, U.S.A.
ई-मेल - alok.misra@hindi.org
दूरभाष - 603-681-9150

रमेश जोशी, प्रधान सम्पादक
Mr. Ramesh Joshi, Chief Editor
Email – joshikavirai@gmail.com
editor@hindi.org

डॉ. अंजना सिंह सेंगर, डिजीटल मीडिया एडिटर
Dr. Anjana Singh Sengar, Digital Media Editor
Email – anjanasiak90@gmail.com

भारती मिश्र, संकलन, संपादन सहयोग
Bharti Mishra, Collection, Co-editor
Email – batua896@gmail.com

यदि आप चाहते हैं कि आपके मित्रगण भी विश्वा पढ़ें, विश्वा से जुड़ें तो हमें उनका ई मेल का पता उपलब्ध करवा दें जिससे हम उन्हें विश्वा की पीडीएफ़ भिजवा सकें। संपर्क – mail@hindi.org

विश्वा के लेखकों से

1. एक बार में दो से ज्यादा प्रविष्टियाँ न भेजें।
2. रचनाओं में एक पक्षीय, कट्टरतावादी, अवैज्ञानिक, साम्प्रदायिक, रंग-नस्लभेदी, अतार्किक, अन्धविश्वासी, अफवाही और प्रचारात्मक सामग्री से परहेज करें। सर्वसमावेशी और वैश्विक मानवीय दृष्टि अपनाएँ।
3. अपनी रचना की प्रूफ रीडिंग करके भेजें। वर्तनी (Spelling) के लिए हम जिम्मेदार नहीं होंगे। इससे रचना की गुणवत्ता भी संदेहास्पद हो जाती है।
4. रचना एरियल यूनिकोड MS या मंगल फॉण्ट (12) में भेजें।
5. पेज पर सिर्फ रचना का नाम और रचना ही लिखें। रचना छपने लायक फॉर्मेट में भेजें।
6. रचनाएँ एक से अधिक हों तो अलग-अलग word और pdf document में भेजें।
7. अपने बायो डेटा में डाक का पता, ईमेल, फोन नंबर ज़रूर भेजें। हाँ, ये सूचनाएँ उतनी ही छापी जायेंगी जितना आप चाहेंगे लेकिन हमारी जानकारी के लिए ये आवश्यक हैं। यदि आपकी पुस्तकें प्रकाशित हैं तो उनका विधा सहित उल्लेख भी करें। अपने बायोडाटा को word और pdf document में भेजें।
8. अपनी पासपोर्ट साइज़ तस्वीर अलग से भेजें। रचना के साथ अप्रकाशित और मौलिक होने का प्रमाणपत्र भी संलग्न करें।
9. रपट, रचना, समाचार के साथ के फोटो 250px तक होनी चाहिए।
10. 'विश्वा' के लिए भेजी गई रचना दो महिने तक कहीं न भेजें।
11. इंटरनेट की सुविधा का दुरुपयोग करते हुए एक ही रचना पचासों पत्रिकाओं में भेजकर अपनी और हमारी प्रतिबद्धता को सस्ता न बनाएँ।
12. प्रवासी अपने यहाँ की किसी व्यक्तिगत उपलब्धि तथा सांस्कृतिक, साहित्यिक और सामाजिक हलचलों की सचित्र-प्रामाणिक जानकारियाँ उचित तरीके से भेज सकते हैं।
13. यदि छंद का ज्ञान नहीं है तो कोई बात नहीं लेकिन यदि छंद में लिखें तो उसके अनुशासन का पूरा पालन करें।
14. हिन्दी से इतर भाषाओं के जीवन मूल्यों और मानवीय गरिमा से संपन्न रचनाओं का अनुवाद भी भेज सकते हैं। ऐसे में जहाँ मूल लेखक से अनुमति आवश्यक हो तो वह भी संलग्न करें।
15. पुस्तक की समीक्षा के लिए दो प्रतियाँ भेजें। हस्तलिखित, स्केनिंग और पीडीऍफ़ वाली सामग्री का उपयोग हम नहीं कर सकेंगे।
16. किसी भी रचना पर किसी प्रकार के मानदेय का कोई प्रावधान नहीं है।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनका अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की रीति-नीति से कोई संबंध नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association

संस्थापक - डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह
Founder – Dr. Kunwar Chandraprakash Singh

बोर्ड के सदस्य / Board of Trustees

श्री तरुण सुरती (TN) अध्यक्ष, न्यासी समिति
Mr. Tarun Surti, Chairman 615-812-6164 tarunsurti@yahoo.com

श्री आलोक मिश्र (NH)
Mr. Alok Misra 603-681-9150 alok.iha@gmail.com

डॉ. रवि प्रकाश सिंह (TN)
Dr. Ravi Prakash Singh 615-785-7888 ngdsdg@gmail.com

श्री स्वप्न धैर्यवान (TX)
Mr. Swapan Dhairyawan 281-382-0348 swapandha@yahoo.com

श्री इंद्रजीत शर्मा (NY)
Mr. Inderjeet Sharma 917-273-9744 guru.richmondhill@gmail.com

कार्याधिकारी / Executive Officers

श्री संजीव जायसवाल (TX) अध्यक्ष
Mr. Sanjeev Jaiswal, President 508-369-7639 president@hindi.org

श्री उमेश कुमार सचिव
Mr. Umesh Kumar (TN) Secretary 615-870-7088 secretary@hindi.org

श्री चन्द्रकांत पटेल (TX) कोषाध्यक्ष
Mr. Chandrakant Patel, Treasurer 832-423-7979 treasurer@hindi.org

कार्यकारी समितियाँ Committees Chairs

प्रौद्योगिकी / Technology

श्री उमेश कुमार सचिव
Mr. Umesh Kumar (TN) Secretary 615-870-7088 umeshkharwar79@gmail.com

हिन्दी शिक्षण / Hindi Education

श्रीमती किरण खेतान
Mrs. Kiran Khaitan (OH) 330-622-1377 kirankhaitan@yahoo.com

निधि संग्रह / Fundraising

डॉ. शोभा खंडेलवाल
Dr. Shobha Khandelwal (OH) 330-421-6638 shobhakhandelwal@gmail.com

शाखा समन्वय / Chapter coordination

श्रीमती अनीता सिंघल
Mrs. Anita Singhal (TX) 817-319-2678 anitagsinghal@gmail.com

सदस्यता / Membership

चौधरी प्रताप सिंह
Choudhari Pratap Singh (MD) 202-413-5918 chpratapsingh1008@gmail.com

विश्वा / श्री रमेश जोशी
Vishwa / Mr. Ramesh Joshi (India) 91-94601-55700 joshikavirai@gmail.com

संवाद / डॉ. शैल जैन
Samvad Newsletter / Dr. Shail Jain 330-421-7528 shailj53@hotmail.com

शाखा संयोजक, Chapter Presidents USA

डॉ. राकेश रंजन
Dr. Rakesh Ranjan NE Ohio 216-870-4375 rranjan@charakresearch.com

श्रीमती वीणा शर्मा
Mrs. Veena Sharma Dallas, TX 214-455-6592 mohan_veena@yahoo.com

श्री सौंदर्य (संजय) सोहोनी
Mr. Saundarya Sohoni Houston 281-943-9758 saundaryasohoni@gmail.com

सुश्री सीमा वर्मा
Ms Seema Verma Nashville, TN 904-525-1795 call.seema@gmail.com

चौधरी प्रताप सिंह
Choudhary Pratap Singh MD 202-413-5918 chpratapsingh1008@gmail.com

डॉ. बबिता श्रीवास्तव
Dr. Babita Srivastava New Jersey, NJ 908-892-6133srivastava.babita@yahoo.com

श्री विरेश सिंह
Mr. Viresh Singh Philadelphia, PA 484-425-7734 vireshsingh999@gmail.com

श्री आदित्य शाही
Mr. Aditya Shahi Indiana 818-359-9234 ihaindiana@gmail.com

सुश्री प्रिया भारद्वाज
Ms. Priya Bhardwaj Charlotte 919-995-2637 bharadwajpriya166@gmail.com

शाखा संयोजक, Chapter Presidents India

श्रीमती मुन्ना जगेतिया Hyderabad
Mrs. Munna Jagetia A.P., Telangana 91-94901-89715 munnaop@gmail.com

डॉ. मनमोहन शुक्ला
Dr. Manmohan Shukla Prayagraj, UP 91-83407-10237 shukla.mm.147@gmail.com

डॉ. शोभारानी सिंह Bihar
Dr. Shobharani Singh Jharkhand 91-99393-92605 drshobharani.vama@gmail.com

श्री अशोक लव
Mr. Ashok 'Lav' Delhi, NCR 91-89206-08821 kumar1641@gmail.com

डॉ.(प्रो.) ओम प्रकाश तिवारी
Dr. (Prof.) Om Prakash Tiwari Maharastra 91-96511-23803 optiwari9651@gmail.com

मुद्रण एवं प्रस्तुति :
अनुज्ञा बुक्स
(पुस्तक प्रकाशक, विक्रेता और मुद्रक)
1/10206, LANE NO. 1E, WEST GORAKH PARK, SHAHDARA, DELHI-110032
CELL/WhatsApp 07291920186, 09350809192 • e-mail: anuugyabooks@gmail.com
salesanuugyabooks@gmail.com • www: anuugyabooks.com

अनुक्रम

सम्पादकीय

5 उत्सव में क्या तेरा मेरा
रमेश जोशी

स्थायी स्तम्भ

6 विशेष आलेख – 1857 के क्रांतिकारी
शम्सुल इस्लाम

10 भारत की खोज–पं. नेहरू
संक्षेप– *डॉ. निर्मला जैन*

14 विशिष्ट शृंखला : ज्ञानपीठ पुरस्कार 1986
सच्चिदानंद राउतराय
प्रस्तुति : *डॉ. दीपक पाण्डेय*

18 इतिहास रचती आवाज़ें – कराइक्कल अम्मैयर
पूर्वा भारद्वाज

21 वे दिन वे लोग : संस्मरण – मुझे वह याद है
शिशिर कुमार बंदोपाध्याय

मज़े-मज़े में

22 झाल-मुड़ी के नाम एक पत्र
मनोज कुमार झा

25 टार्च बेचने वाले
हरिशंकर परसाई

कथा कहानी

27 एक सदैव प्रासंगिक कहानी – दो बाँके
भगवतीचरण वर्मा

आलेख

16 ग़दर पार्टी : स्वातंत्र्य-गगन का ज्वाज्वल्यमान उल्कापिंड
सीताराम येचुरी

20 मुकरी : एक लोक-लुभावन काव्य रूप
त्रिलोक सिंह ठकुरेला

31 भारत : एक भाषाई सभ्यता
गणेश एन देवी

34 पर्व/दिवस : विश्व मैत्री दिवस – मैत्री : एक सनातन भाव
राकेश अचल

35 विचारणीय – उत्सव नहीं होता युद्ध
कृष्णप्रताप सिंह

40 हमारी अलौकिक बहुलौकिकता
अशोक वाजपेयी

41 संवाद युद्ध नहीं होता
डॉ. रीटा अरोड़ा

42 श्रेष्ठता ग्रन्थि का मोतियाबिंद
त्रिभुवन

45 विचार – स्वैच्छिक संतानहीनता
डॉ. शैलेश शुक्ला

वातायन

29 *मय्यू अली* की कविताएँ

30 वातायन – फ़ासीवाद जब आएगा
टेरी एरेट अनुवाद : *राजेश चंद्रा*

कविताएँ

23 *विज्ञान व्रत* की ग़ज़लें

23 गर्भनाल कब कट पाती है किसी की – *अमिता शर्मा*

24 *सतीश झा* की दो कविताएँ

26 *'आबिद आलमी'* की ग़ज़ल

33 झंडा – *मंजुल भारद्वाज*

38 सूरज के सामने– *इलियास अहमद ख़ान "हमसर"*

39 *जयपाल* की दो कविताएँ

किताबें

47 अलकनंदा सुत

हलचल

37 साहित्य-संस्कृति
प्रस्तुति : *रामशरण जोशी*

41 ग़दर पार्टी का इतिहास

48 जब क्लीवलैंड गुलाबलैंड हुआ
प्रस्तुति : *डॉक्टर सुनीता द्विवेदी*

विविध

13 श्रद्धांजलि – शायर बशीर बद्र

38 महान विचार

38 शाश्वत संदेश : शाश्वत मूल्य

39 सद्‌विचार

39 इस अंक का मुखपृष्ठ

44 श्रद्धांजलि – पद्मश्री रघु राय और आशा भोंसले

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति

International Hindi Association

A 501(c)(3) Non-profit Organization ● 2129 Stratford Road, Murfreesboro, TN 37129, U.S.A. ● Founded in 1980
www.hindi.org

MEMBERSHIP FORM

Please fill out all questions on the form clearly, sign, and return it via email to: **treasurer@hindi.org**, or via mail to: Treasurer, 5907 Majestic Pines Dr, Kingwood, TX 77345, USA. You may print the form, sign, and email a camera image.

Membership fee is nonrefundable. Associate Life members enjoy same benefits as regular Life members, except for voting rights. All members get: 1) Digital Vishwa magazine quarterly, and Samvad newsletter monthly. 2) Discounts on IHA products, services, and events. 3) Volunteer opportunities in US and India. 4) Early notifications.

Title: ☐Mr. ☐Mrs. ☐Ms. ☐Dr. ☐Prof. **Date:** _____

First Name: _____ **Last Name:** _____

Email ID: _____ **Mobile Number:** _____

Street Address: _____

City: _____ **State:** _____

Postal Code: _____ **Country:** _____

Spouse's Name: (optional) ……..……..

Membership: Select one

☐ Life Member $250 USD ☐ Associate Life Member $150 USD

☐ Annual Member $35 USD ☐ Institutional Annual Member $75 USD

Please make check payable to 'International Hindi Association' in USD and mail to above-mentioned address. *Or* ***Pay Online***

Do you wish to receive paper copy of Vishwa magazine, please check here: ☐

There could be a (USD $15/year) printing & mailing charge in the future.

Specimen Signature:
Print or Insert photo of your Signature

Would you like to be a part of the Leadership Team and volunteer in your area of interest or expertise ?
(Check all that apply)

☐ Hindi/English Content Writing
☐ Information Technology, Website
☐ Social media, Digital Marketing
☐ Fundraising, Sponsorships
☐ Public/Government Relations
☐ Other (please specify): _____
☐ Hindi Education
☐ Graphics, Video
☐ Organization
☐ Legal, Compliance
☐ Sales, Support

'Vishwa' welcomes original writings in Hindi from all quarters. Writings dealing with immigrant experiences are especially welcome. For further information, or to submit your writings for consideration, please contact: The Editor, Mr. Ramesh Joshi, Phone USA +1 (330) 688-4927, India +91 94601 55700; Email: joshikavirai@gmail.com or editor@hindi.org

Should this information change in the future, please contact us to update. All your information is kept confidential.
International Hindi Association is a non-political, non-religious, lingo-cultural organization. Jan 2024

सम्पादकीय

उत्सव में क्या तेरा मेरा

कोई दो दशक पहले एक गीतिका लिखी थी–

सबको प्रेम प्रसादी देना
भले न सोना चांदी देना
धूप हवा पानी चिड़ियाँ हों
रोटी चाहे आधी देना
उत्सव में क्या तेरा मेरा
क्रिसमस ईद उगादी देना

आज जब दुनिया में दूसरों के संसाधनों पर कब्जे की होड़ मची हुई है और सारी दुनिया एक अदृश्य तनाव में अकड़ी हुई है तो यह बात फिर से और अधिक प्रासंगिक लगने लगी है।

हमारे शास्त्रों में कहा गया है–

अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्

और यही हमारे संविधान का ध्येय वाक्य भी है।

आपस में बांटने से सुख बढ़ जाता है और दुख घट जाता है। बांटने के लिए कोई दूसरा होना चाहिए। अकेला किसके साथ क्या बांटे ? वैसे कहते हैं कि भजन और भोजन दोनों एकांत के विषय हैं फिर भी सबके साथ कीर्तन, जागरण का अपना आनंद है और सामूहिक भोज का अपना एक मज़ा है। एकांत साधना और तपस्या का महत्व है तो उत्सव और मेलों ठेलों की भी अपनी जरूरत है। यही तो संस्कृति है। इसीलिए संस्कृति प्रतिरोध और विरोध में नहीं, मेल मिलाप में विकसित होती है। जहाँ व्यक्ति में विशिष्टता की कुंठा होती है तो वहीं सबके साथ एकाकार होने का भाव भी कहीं न कहीं होता है क्योंकि मूलतः समस्त सृष्टि एक तत्व से ही बनी है। प्रसाद कामायनी में कहते हैं–

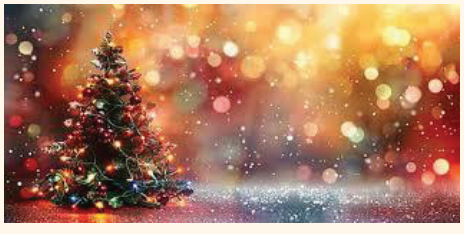

एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।

उत् इसी भाव के लिए बना एक उपसर्ग हैं जो किसी भी संज्ञा को ऊर्ध्वगामी बना देता है। यह संपर्क भेद से भिन्न भिन्न रूपों में लिखित और उच्चरित होता है जैसे उत्कर्ष, उन्मेष, उच्छवास, उद्ग्रीव, उत्सव, उद्दीप्त, उज्ज्वल, उद्घाटन आदि। इस प्रकार उत् का अर्थ ऊपर, ऊँचा, श्रेष्ठ आदि हो सकता है। उत्स का अर्थ स्रोत, झरना, उद्गम भी होता है।

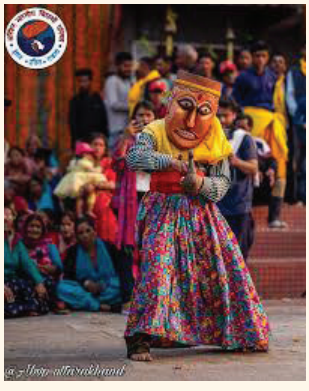

जैसे पहाड़ से अकस्मात झरना फूट पड़ता है किसी बच्चे या मुग्धा नायिका की बेसाख्ता हँसी की तरह। जैसे पहाड़ कोई कल कल करती नदी बनकर हहराते समुद्र से मिलना चाहता हो। कई देर तक अकेले एकांत में बैठे व्यक्ति का उच्छवास। पृथ्वी के गर्भ में इकट्ठा होती गैसों का किसी ज्वालामुखी के रूप में फूट पड़ना। कहीं धरती को तोड़कर पाताल से पानी का आकाश में उछल पड़ना जिसे पातालतोड़ कुआँ कहा जाता है। उत् उछलना, उछालना, छलकना, छलकाना।

ये सब प्रकृति के उत्सव हैं। ऐसे ही मनुष्य खुद को कितना भी बड़ा माने लेकिन वह सबके साथ ही सार्थक होता है और सार्थकता की यह इच्छा उसे सब भेदभावों को भुलाकर सब के साथ एकाकार होने के लिए प्रेरित करती है। यही जीवन के उत्सव हैं।

उत्सव व्यक्ति की कुंठाओं को समाप्त करके उसे सहज बनाते हैं। उत्सव में व्यक्ति देकर पाता है जैसे समुद्र का जल भाप बनकर ही वर्षा के रूप में मयब्याज के लाभान्वित होता है।

अगर जन्म उत्सव है तो सबके साथ प्रेम पूर्वक जिया गया जीवन अपनी समाप्ति के बाद भी एक उत्सव ही है। जीवन का उत्सर्ग, न्यौछावर करना। फिर चाहे एक झटके में भगत सिंह की तरह हो या तिल तिल कर दीपक के निर्वाण की तरह गाँधी का जीवन। जीवन और मृत्यु दोनों एक कला हैं, एक उत्सव हैं।

इसीलिए भारतीय दर्शन में जीवन अपनी सभी अपूर्णताओं के बावजूद एक उत्सव है।

दुख अकेले भी झेला जा सकता है लेकिन सुख अकेले अनुभव ही नहीं किया जा सकता जब तक उसे सबके साथ साझा न किया जाए। पेड़ भी सूख तो चुपचाप जाता है लेकिन जब बसंत आता है तो वह शिराओं में, शाखाओं में समा नहीं सकता, और फूल पत्तियों और खुशबू में फूट पड़ता है।

कोई भी समाज उतना ही सभ्य, सुसंस्कृत और सुखी है जितना वह अपने उत्सवों में आपसी साझीदारी करता है। उत्सव अकेले का हो ही नहीं सकता। जैसे अकेला ब्रह्म या पुरुष कुछ भी नहीं। उसका होना न होना बराबर। वह कुछ भी हो सकता है लेकिन सृष्टि नहीं जो अपनी समस्त नश्वरताओं के बावजूद शाश्वत है।

हमारी स्वतंत्रता का यह 80वां उत्सव हमें अपने उत्स से सभी क्षुद्रताओं, कुंठाओं और भेदों से ऊपर उठकर जीवन और सहभाव के महा उत्सव से जोड़े। वैविध्य की एकात्मता का महाउत्सव। कट्टरता, अज्ञान, गरीबी, घृणा, भेदभाव, ऊँचनीच, असत्य से आजादी का जश्न। सत्यमेव जयते!

–रमेश जोशी

विशेष आलेख

1857 के क्रांतिकारी

शम्सुल इस्लाम

10 मई 1857, दिन रविवार को छिड़े भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में देश के हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों ने मिलकर विश्व की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी ताक़त को चुनौती दी थी। इस अभूतपर्व एकता ने अंग्रेज़ शासकों को इस बात का अच्छी तरह अहसास करा दिया था कि अगर भारत पर राज करना है तो हर हालत में देश के सब से बड़े दो धार्मिक समुदायों; हिन्दू-मुसलमान के बीच सांप्रदायिक बँटवारे को अमल में लाना होगा और देश के इन दो बड़े धार्मिक संप्रदायों के बीच दूरी पैदा कराने के लिए भरसक प्रयास करने होंगे। यही कारण था कि संग्राम की समाप्ति के बाद इंग्लैंड में बैठे भारतीय मामलों के मंत्री (लॉर्ड वुड) ने भारत में अंग्रेज़ी राज के मुखिया (लॉर्ड एल्गिन) को यह निर्देश दिया कि अगर भारत पर राज करना है तो हिन्दुओं और मुसलमानों को लड़वाना होगा और "हम लोगों को वैसा सब कुछ करना चाहिए, ताकि उन सब में एक साझी भावना का विकास ना हो।"

इस दर्शन को अमल में लाने के लिए गोरे शासकों और उनके भारतीय चाटुकारों ने यह सिद्धांत पेश किया कि हिन्दू और मुसलमान हमेशा से ही दो अलग क़ौमें रही हैं। सच तो यह है कि सांप्रदायिक राजनीति को हवा देना और भारतीय समाज को धर्मों के आधार पर बाँटना अंग्रेज़ों की एक मजबूरी बन गया था। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में, जिसको अंग्रेज़ शासको ने 'फ़ौजी बग़ावत' का नाम दिया था, हिन्दुओं-मुसलमानों-सिखों के व्यापक हिस्से एकजुट होकर ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के खिलाफ इतनी बहादुरी से लड़े और कुर्बानियाँ दीं कि फ़िरंगी शासन विनाश के कगार पर पहुँच गया। हालाकि अंग्रेज़ जीत गए लेकिन यह गद्दारों और जासूसो द्वारा रचे गए षड़यंत्रों की वजह से ही संभव हो सका।

इस महान स्वतंत्रता संग्राम की यह सच्चाई किसी से छुपी नहीं हैं कि इसका नेतृत्व नानासाहब, दिल्ली के बहादुरशाह ज़फ़र, मौलवी अहमदशाह, तात्या टोपे, खान बहादुरखान, रानी लक्ष्मीबाई, हज़रत महल, अज़ीमुल्लाह खान और शहज़ादा फिरोज़शाह ने मिलकर किया। इस संग्राम में मौलवी, पंडित, ग्रंथी, ज़मींदार, किसान, व्यापारी, वकील, नौकर, महिलाएँ, छात्र और सभी जातियों-धर्मों के लोग भी शामिल हुए और जानों की कुर्बानियाँ दीं। हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिकता के मौजूदा झंडाबरदारों को इस ऐतिहासिक सच्चाई से अवगत कराना ज़रूरी हैं कि, 11 मई, 1857 को जिस क्रांतिकारी सेना ने मुसलमान बहादुर शाह ज़फ़र को भारत का स्वतंत्र शासक घोषित किया था, उसमें 70 प्रतिशत से भी ज्यादा सैनिक हिन्दू थे। बहादुरशाह ज़फ़र को बादशाह बनाने में नाना साहब, तात्या टोपे और लक्ष्मीबाई ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

1857 के संग्राम से संबंधित समकालीन दस्तावेज़ देश के चप्पे-चप्पे पर घटी ऐसी दास्तानों से भरे पड़ें हैं, जहाँ मुसलमान, हिन्दू और सिख इस बात की परवाह किए बिना, कि कौन नेतृत्व कर रहा है, और कितनी भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है, एक होकर लड़े और 1857 की जंगे-आज़ादी में एक साथ प्राणों की आहुति दी। उस समय की सच्चाइयाँ बहुत स्पष्ट रूप से यह बताती हैं कि हिन्दू-मुसलमान पृथकतावाद और दोनों संप्रदायों के बीच विद्वेष का अस्तित्व उस समय एक समस्या के रूप में मौजूद नहीं था।

विभिन्न धर्मों के लोगों ने जिस तरह की साझी शहादत की दास्ताने रचीं उसके कुछ उदाहरण जो समकालीन दस्तावेज़ों में उपलब्ध हैं जो यहाँ पर प्रस्तुत हैं।

दिल्ली

फ़िरंगियों ने दिल्ली (जिसे 11 मई 1857 के दिन इंकलाबियों ने अंग्रेज़ी शासन से मुक्त करवाकर एक स्वतंत्र भारत की राजधानी घोषित किया था) पर कब्जे को अपनी नाक का सवाल बना लिया था। उनको लगता था कि अगर एक बार दिल्ली हाथ में आ गई तो पूरे देश में भड़के हुए संग्राम को दबाना मुश्किल नहीं होगा। 1857 में जून से लेकर सितम्बर माह तक अंग्रेज़ सेना ने दिल्ली की ज़बर्दस्त घेराबंदी की हुई थी और उनका लगातार यह प्रयास चला था कि दिल्ली में मौजूद इंकलाबी सेना और लोगों को धर्म के नाम पर बँटवाया जाए। लेकिन समकालीन दस्तावेज़ इस सच्चाई को रेखांकित करते हैं कि अंग्रेज़ों के खादिमों और जासूसों की तमाम कोशिशों के बावजूद हिन्दू-मुसलमान-सिख मिलकर दिल्ली की हिफाज़त करते रहे। दिल्ली की इंक़लाबी सेना की कमान जिन लोगों के हाथों में थी उन लोगों के नाम थे अज़ीमुल्लाह ख़ान, शाम सिंह डूंगा, सिरधारा सिंह, गौस मुहम्मद, हीरा सिंह और 'एक दोआबी ब्राह्मण'। इंकलाबी सेना जिसे फ़िरंगी 'पुरबिया' सेना कहते थे उसमें भी विशाल बहुमत हिन्दुओं का ही था।

हिन्दू-मुसलमान एकता किस उत्तम दर्जे की थी उसका अंदाजा उस घटना से लगाया जा सकता है जब अंग्रेजों के हमले का मुकाबला करने के लिए शाहजहाँ के जमाने की एक तोप को ठीक-ठाक करके मोर्चे पर लगाया जा रहा था। इस तोप को पहली बार चलाने से पहले

बहादुरशाह ज़फ़र और दूसरे सैनिक अधिकारियों की मौजूदगी में पंडितों ने इसकी आरती उतारी, मालाएँ चढ़ाई और आशीर्वाद दिया। अंग्रेज़ जासूस सांप्रदायिक ज़हर न फैला पाएँ इसलिए इंकलाबी सेना ने दिल्ली में भी गौ-वध पर प्रतिबंध की घोषणा करते हुए यह एलान किया की जो भी ऐसा करते हुए पाया जाएगा उसे तोप से उड़ा दिया जायेगा।

हरियाणा

हाँसी (अब हरियाणा में) में अंग्रेज़ शासकों के खिलाफ हुकुमचंद जैन और मुनीर बेग का साझा महान प्रतिरोध इस सिलसिले का एक जीता जागता उदाहरण है। हुकुमचंद जैन, हाँसी और करनाल के कानूनगो, फ़ारसी और गणित के विद्वान और अपने क्षेत्र के एक बड़े जमींदार थे। 1857 के संग्राम की भनक मिलते ही वे दिल्ली दरबार पहुँचे जहाँ तात्या टोपे भी मौजूद थे। उन्होंने अपने क्षेत्र में इंकलाब का बीड़ा उठाया और अपने करीबी साथी मिर्ज़ा मुनीर बेग के साथ, जो खुद भी फ़ारसी और गणित में पारंगत थे, मिलकर सशस्त्र विद्रोह की तैयारियाँ शुरू की। इन दोनों ने मिलकर इंक़लाबी सेना के दिल्ली नेतृत्व के साथ मिलकर आज के हरियाणा क्षेत्र (उस दौर में भी यह क्षेत्र हरियाणा के नाम से ही जाना जाता था) को अंग्रेज़ों की दासता से मुक्त कराने की रणनीति बनाई। एक निर्णायक युद्ध में दिल्ली से सहायता न पहुँच पाने और कुछ अंग्रेज़ों के दलाल राजाओं की गद्दारी की वजह से इन्हें हार का सामना करना पड़ा। सितम्बर के अंत में इंकलाबियों के हाथ से दिल्ली निकल जाने के बाद इन दोनों को हाँसी में गिरफ्तार किया गया और मौत की सज़ा सुनाई गई। अंग्रेज़ शासक इन दोनों से इतने खौफ़-ज़दा थे और हिन्दू-मुसलमान एकता की शानदार मिसाल से इतने परेशान थे कि, उन्होंने 19 जनवरी 1858 को फांसी देने के बाद हुकुमचंद जैन को दफ़नाया जबकि मुनीर बेग को जलाया गया। अंग्रेज़ों द्वारा किए गए इस कुकर्म का एकमात्र उद्देश्य दो धर्मों के अनुयाइयों की एकता का मज़ाक उड़ाना और उन्हें ज़लील करना था। फ़िरंगियों ने एक और शर्मनाक काम यह किया कि, बहादुर हुकुमचंद जैन के 13 वर्षीय भतीजे फ़कीरचंद जैन को भी हाँसी में सार्वजनिक तौर पर फांसी दी क्योंकि इस बच्चे ने उन्हें फांसी देने का विरोध किया था।

अयोध्या

अयोध्या स्वतंत्र भारत में हिन्दू-मुसलमानों के बीच में नफ़रत फैलाने का एक बड़ा मुद्दा बनकर उभरा है। बाबरी मस्जिद-रामजन्म भूमि विवाद ने दोनों संप्रदायों के बीच में अविश्वास और हिंसा के माहौल को निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लेकिन 1857 में इसी अयोध्या में किस तरह मौलवी और महंत व साधारण हिन्दू-मुसलमान-सिख अंग्रेज़ी राज के खिलाफ़ एक होकर लड़ते हुए फांसी के फंदों पर झूल गए इसकी अनगिनत दास्तानें हैं।

मौलाना अमीर अली अयोध्या के एक मशहूर मौलवी थे और बाबा रामचरण दास वहाँ के प्रसिद्ध हनुमानगढ़ी मंदिर के पुजारी। जब अंग्रेज़ों के साथ एक युद्ध में इन दोनों को बंदी बनाया गया तो उन्हें अयोध्या में कुबेर टीले पर एक इमली के पेड़ पर एक साथ फांसी पर लटका दिया गया। अयोध्या ने ही इस संग्राम के दो विभिन्न धर्मों से संबंध रखनेवाले दो और ऐसे नायक पैदा किए जिन्होंने अंग्रेज़ फ़ौज को नाकों चने चबवा दिए। अच्छन खान और शम्भुप्रसाद शुक्ला दो दोस्त थे जिन्होंने ज़िला फैजाबाद में राजा देबीबक्श सिंह की क्रांतिकारी सेना की कमान संभाली हुई थी। एक युद्ध के दौरान इनको बंदी बनाया गया और समकालीन सरकारी दस्तावेज इस शर्मनाक सच्चाई को उजागर करते हैं कि इन दोनों क्रांतिकारियों की जान लेने से पहले भयानक यातनाएँ दी गई और दोनों के गले सार्वजनिक रूप से रेते गए। अयोध्या जिसने हिन्दू-मुसलमान एकता के पौधे को खून से सींचा था वो स्थली बाद में क्यों अंग्रेज़ शासकों की फूट डालो और राज करो नीति का एक मुख्य मुकाम बनकर उभरी, इसको समझना ज़रा भी मुश्किल नहीं है।

राजस्थान

कोटा रियासत (अब राजस्थान में) पर अंग्रेज़परस्त महाराव का राज था। यहाँ के एक राजदरबारी थे, लाला जयदलाल भटनागर जो उर्दू-फ़ारसी और अंग्रेज़ी भाषाओं पर समान महारत रखते थे, इन्होंने महाराव और अंग्रेज़ शासकों के खिलाफ बग़ावत का झंडा बुलंद किया। इस विद्रोह में इनका साथ देने वालों में प्रमुख थे, वहाँ के सेनापति मेहराब खान। इन लोगों ने मिलकर देश भर के अन्य क्रांतिकारी समूहों से संपर्क स्थापित किया और कोटा में अंग्रेज़ अधिकारियों और सैनिकों पर हमला बोला। बाद में ये लोग लक्ष्मीबाई के साथ कई मोर्चों पर अंग्रेज़ सेना से लोहा लेते रहे। लाला जयदयाल 1860 तक अंग्रेज़ों के हाथ नहीं लगे लेकिन उसी साल 15 अप्रैल को जयपुर में गिरफ्तार किए गए और कोटा में 17 सितंबर 1860 को फांसी पर लटकाए गए। मेहराब खान को भी अंग्रेज़ 1860 में ही गिरफ़्तार कर सके और उन्हें भी कोटा में सार्वजनिक रूप से फांसी दी गई।

केंद्रीय भारत

मालवा : मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र में अंग्रेज़ फ़ौज़ो को लगातार छकाने वाली जो इंक़लाबी सेना सक्रिय रही उसके साझे नायक तात्या टोपे, राव साहब, फ़िरोज़शाह और मौलवी फ़ज़ल हक़ थे। इन लोगों ने मिलकर अंग्रेज़ों से जितनी लड़ाइयाँ जीती उस तरह की मिसालें कम ही मिलती हैं। मौलवी फ़ज़ल हक़ अपने 480 हिन्दू-मुसलमान-सिख साथियों के साथ 17 दिसंबर, 1858 को रानौड़ के युद्ध में शहीद हुए। तात्या टोपे 1859 तक स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व करते रहे और 18 अप्रैल, 1859 को ग्वालियर के सिंधिया राजघराने की गद्दारी की वजह से बंदी बनाए गए और सिंधिया की रियासत में

स्थित शिवपुरी में फांसी पर लटकाए गए। और फ़िरोज़शाह कभी भी अंग्रेज़ों के हाथ नहीं आए।

झांसी : मध्यभारत में रानी लक्ष्मीबाई के इंक़लाबी प्रतिरोध से सभी वाक़िफ़ हैं। लेकिन बहुत लोग यह नहीं जानते हैं कि रानी लक्ष्मीबाई के तोप खाने के मुखिया एक पठान गुलाम ग़ौस खान थे। रानी की घुड़सवार सेना के मुखिया भी एक मुसलमान खुदाबख़्श थे। जब झांसी पर अंग्रेज़ों ने हमला बोला तो झांसी के क़िले में रानी की सेना का नेतृत्व करते हुए दोनों 4 जून, 1858 को शहादत पा गए।

इस सच्चाई से भी बहुत कम लोग वाक़िफ़ हैं कि लक्ष्मीबाई की निजी सुरक्षा अधिकारी एक मुसलमान महिला मुंदार [मुंज़र] थीं। उन्होंने रानी का साया बनकर झांसी, कूंच कालपी और ग्वालियर के युद्धों में अंग्रेज़ी सेना का मुकाबला किया। कोटा-की-सराए (ग्वालियर) युद्ध में वे लड़ते हुए रानी के साथ (18 जून, 1858) शहीद हुईं।

रूहेल खंड

रूहेल खंड के इलाके में खान बहादुर खान के नेतृत्व में बहादुरशाह ज़फ़र की सरकार की सहमति से स्वतंत्र राज स्थापित कर लिया गया था। खान बहादुर खान के मुख्य सहयोगी खुशीराम थे। इन्होंने मिलकर रूहेल खंड का राजकाज चलाने के लिए आठ सदस्यों वाली हिन्दू और मुसलमानों की साझी समिति का गठन किया। अंग्रेज़ दोनों संप्रदायों के बीच दंगा न करा पाएँ, इसके लिए एक हुक्मनामे के द्वारा गौ-वध पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

दिल्ली में इंक़लाबी शासन के पतन के बाद अंग्रेज़ों ने अपना निशाना रुहेल खंड को ही बनाया। खानबहादुर खान, खुशीराम और उनके 243 सहयोगियों को एक ही दिन (20 मार्च, 1860) को बरेली कमीश्नरी के सामने सामूहिक फांसी दी गई। अंग्रेज़ शासकों ने इन क्रांतिकारियों की अंत्येष्टी करने पर भी प्रतिबंध लगा दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि इनके शव बहुत दिनों तक सूलियों पर झूलते रहे।

1857 के संग्राम के दौरान हिन्दू-मुसलमान-सिख एकता किसी एक क्षेत्र और समूह तक सीमित नहीं थी। इन धर्मों के अनुयायियों के बीच एकता एक ज़मीनी सच्चाई थी जिस से महिलाएँ भी अछूती नहीं थीं। पश्चिमी उत्तरी प्रदेश के मुज़फ़्फ़रनगर ज़िले के परगना थाना-भवन में ही 11 महिलाओं को अंग्रेज़ों के खिलाफ़ बगावत करने के जुर्म में एक साथ फांसी पर चढ़ाया गया। इनमें से कुछ नायिकाओं के नाम इस प्रकार हैं; असगरी बेगम जो अंग्रेज़ों के खिलाफ़ शस्त्र विद्रोह में नेतृत्वकारी भूमिका निभाती रहीं। अंग्रेज़ों ने इन्हें बंदी बनाकर ज़िंदा जला दिया।

इस क्षेत्र की एक अन्य इंकलाबी महिला का नाम आशा देवी था जो गूजर परिवार में पैदा हुई। इन्हें भी अंग्रेज़ी सरकार के खिलाफ़ हथियार उठाने के जुर्म में 1857 में फांसी दी गई। एक अन्य इंक़लाबी नौजवान महिला भगवती देवी थीं जो त्यागी परिवार में पैदा हुई थीं जो फांसी पर लटकाई गईं। इसी क्षेत्र से एक और इंक़लाबी महिला हबीबा थीं जिनका संबंध एक मुसलमान गूजर परिवार से था। हबीबा ने अंग्रेज़ी सेना के खिलाफ़ मुज़फ़्फ़रनगर के आसपास विभिन्न युद्धों में हिस्सा लिया और आखिरकार गिरफ़्तार करके सूली पर लटकाई गई। इस क्षेत्र से एक और बहादुर शहीद महिला बख़्तावरी थीं जिन्हें अंग्रेज़ों के विरुद्ध हथियार उठाने के जुर्म में फांसी दी गयी। इसी क्षेत्र से एक अन्य नौजवान महिला मामकौर, जिनका संबंध चरवाहों के परिवार से था, ने भी 1857 के संग्राम के आरंभिक दौर में ही फांसी के फंदे को चूमा।

1857 के संग्राम में देश का चप्पा-चप्पा इस तरह की दास्तानों से साक्षात करता दिखाता है। विलियम रसल लंदन के एक अखबार 'द टाइम्स' का संवाददाता बनकर 'बग़ावत' का आँखों देखा हाल भेजने के लिए भारत आया था। उसने मार्च 2, 1858 को भेजी गई अपनी रपट में लिखा कि-

"अवध के तमाम मुख्य सरदार चाहे वे मुसलमान हो या हिन्दू, एक हो गए है और शपथ ले चुके है कि वे अपने नौजवान बादशाह, बिरजिस कदर के लिए अपने खून का आख़री क़तरा भी बहा देगें।"

एक अन्य अंग्रेज़ अफ़सर, थामस लो ने मध्य भारत में अंग्रेज़ सेना के अभियानों में लगातार हिस्सेदारी की थी। उस क्षेत्र में 'बागियो' की स्थिति का वर्णन करते हुए उसने अपने संस्मरणों में लिखा कि,

"राजपूत, ब्राह्मण, मुसलमान और मराठा, खुदा और मौहम्मद को याद करनेवाले और ब्रह्म की स्तुति करनेवाले सब इस जंग में (हमारे खिलाफ़) थे।"

फ्रेड राबर्टस, एक अंग्रेज़ सेना-नायक था जो लखनऊ पर कब्ज़ा करने वाले अभियान में शामिल था। यहाँ भी अंग्रेज सेना, जासूसों और षड़यंत्रों की मदद से लखनऊ में दाखिल हो सकी थी। फ्रेड ने लखनऊ पर आक्रमण की नवम्बर, 1857 की दास्तान एक पत्र में बयान करते हुए लिखा कि जब वे शहर में दाखिल हुए तो सैकड़ों हिन्दू-मुसलमान-सिख 'बागी' बुरी तरह जख्मी होकर सड़कों पर पड़े थे और "आगे बढ़ने के लिए उनपर चढ़कर गुज़रना होता था। वे मरते हुए भी हमारे प्रति अपनी नफ़रत का इज़हार कर रहे थे और गालियाँ बकते हुए कह रहे थे 'हम बस खड़े हो जाएँ फिर तुम्हें जिंदा नहीं छोड़ेंगे'।"

ख़राब से ख़राब हालात में भी हिन्दू-मुसलमान-सिख इस तरह की साझी शहादतों की अनगिनत मिसालें पूरे देश में पेश कर रहे थे। यह एकता का जज़्बा किस दर्जे का था उस का अंदाज़ा 1857 की जंग-ए-आज़ादी के इस उर्दू तराने से लगाया जा सकता है जो इस महान संघर्ष के प्रमुख रणनीतिकारों में से एक अज़ीमुल्लाह खान ने रचा था। यह तराना इंक़लाबी सेना का सलामी गीत भी था और दिल्ली से छपने वाले उर्दू अखबार 'पैयाम-ए-आज़ादी' में 13 मई

को छपा था।

हम हैं इसके मालिक हिन्दुस्तान हमारा
पाक वतन है क़ौम का जन्नत से भी प्यारा।
यह हमारी मिल्कियत हिन्दुस्तान हमारा
इसकी रूहानियत [आध्यात्मिकता] से रोशन है जग सारा।

कितना क़दीम [प्राचीन], कितना नईम [सुखद] सब दुनिया से न्यारा
करती है ज़रखेज़ [उपजाऊ] जिसे गंगो-जमन की धारा।
ऊपर बर्फीला पर्वत पहरेदार हमारा
नीचे साहिल पर बजता सागर का नक़्क़ारा।

इसकी खानें उगल रहीं सोना, हीरा, पन्ना
इसकी शान-शौकत का दुनिया में जयकारा।
आया फ़िरंगी दूर से, ऐसा मंतर मारा
लूटा दोनों हाथों से प्यारा वतन हमारा।

आज शहीदों ने तुमको, अहले-वतन ललकारा
तोड़ो गुलामी की ज़ंजीरें, बरसाओ अंगारा।
हिन्दू-मुसलमान, सिख हमारा भाई प्यारा-प्यारा
यह है आज़ादी का झंडा इसे सलाम हमारा।

लूटा दोनों हाथों से प्यारा वतन हमारा।
आज शहीदों ने तुमको, अहले-वतन ललकारा
तोड़ो गुलामी की ज़ंजीरें, बरसाओ अंगारा।
हिन्दू-मुसलमान, सिख हमारा भाई प्यारा-प्यारा
यह है आज़ादी का झंडा इसे सलाम हमारा।

हिन्दू-मुसलमानों का एक-दूसरे के लिए मर-मिटने की दास्तानों का यह गौरवशाली इतिहास पहले सचमुच में अस्तित्व में था। इसकी आज भी पुष्टि की जा सकती है। ये सच्चाइयाँ अंग्रेज़ी हुकूमत के अभिलेखागारों, लोगों के निजी संग्रहों और वृतांतों में सुरक्षित हैं। इस देश के हिन्दू और मुसलमानों के बीच नफ़रत क्यों पैदा कराई गयी और किन लोगों ने इसको हवा दी इस बात को समझना जरा भी मुश्किल नहीं हैं। फ़िरंगियों का मानना था, जैसा कि उस समय के एक बड़े अंग्रेज़ अफ़सर, चाल्स मेटकाफ, ने कहा था कि "1857 का विद्रोह हिन्दुओं और मुसलमानों का साझा काम था।" इस तरह स्वाभाविक है कि 1857 के संग्राम में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जर्बदस्त एकजुटता ने विदेशी शासकों की नींद हराम कर दी थी और उनकी हुकूमत खत्म होने का खतरा सर पर मंडरा रहा था।

इस खतरे को हमेशा के लिए तभी टाला जा सकता था जब हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग दिशाएँ पकड़ें। हिन्दू और मुसलमान सांप्रदायिकता के झंडाबरदारों ने वास्तविकता में अंग्रेज़ शासकों की मदद करने के अलावा और कोई दूसरा काम नहीं किया है। हमें आज इस सच्चाई को कतई नजरअंदाज नहीं करना चाहिए कि आज की साम्प्रदायिक राजनीति दरअसल 1857 के दौरान हिन्दू-मुसलमान-सिख एकता से परेशान अंग्रेज़ हाकिमों का पैंतरा था जिसे हिन्दुस्तानी चाकरों ने कार्यान्वित किया और आज भी सांप्रदायिक ताकतें लगातार कर रही है। इस का मुक़ाबला 1857 की महान साझी

शहादतों से उपजी साझी विरासत की यादों को ताज़ा करके ही किया जा सकता है।

संदर्भ :

1. 'इस महान जंग में अन्य धर्मों के लोग भी शामिल थे, जैसा हम इस वृत्तान्त में जानेंगे, लेकिन समकालीन दस्तावेज़ों में इन्हीं तीन समुदायों का ज़िक्र है।
2. Pande, BN, The Hindu Muslim Problem, Gandhi Smriti & Darshan Samiti, Delhi, p. vi.
3. वही, पृ. 13.
4. इंकलाबी सेना के इन हिन्दू-मुसलमान और सिख कमांडरों के नाम अंग्रेज़ों के दिल्ली में मौजूद जासूसों द्वारा अँगरेज़ फौजी अफसरों को 'पहाड़ी' (जहाँ अब हिन्दुराव अस्पताल है) पर भेजे गए खतों में कई बार मिलता है। इन के अनुसार आज़ादी के जंग लड़ने के लिए एक 'फ़ौजी कोट' का गठन किया गया था जिस में यह सैनिक अधिकारी शामिल थे। जासूसों के इन खतों के लिए देखें, Metcalf, Charles Theophilus, Two Narratives of the Mutiny of Delhi, A Constable & Company, London, 1898, pp. 125-126.
5. दिल्ली में मौजूद अंग्रेज़ों के जासूस, रामजी लाल अलीपुरिया का पहाड़ी पर स्थित अंग्रेज़ी सेना के कैम्प को जुलाई 19, 1857 को लिखा गया पत्र, देखें, शम्सुल इस्लाम (स.), जासूसों के खतूत, फ़ारोस, दिल्ली, 2019, पृ. 86.
6. Chopra, P. N. (Ed.), Who's Who of Indian Martyrs 1857, Volume 3, Government of India, Delhi, 1973, p. 56. इस महत्पूर्ण संग्रह में शहीदों का ब्यौरा समकालीन सरकारी दस्तावेज़ों पर आधारित है और यह सब से विश्वसनीय माना जाता है।
7. वही, पृ. 102. 8. वही, पृ. 102. 9. वही, पृ. 9.
10. वही, पृ. 120. 11. वही, पृ. 3. 12. वही, पृ. 139.
13. वही, पृ. 34. 14. वही, पृ. 62-63. 15. वही, पृ. 91.
16. वही, पृ. 22. 17. वही, पृ. 51.
18. वही, पृ. 125. वे 1862 तक अंग्रेज़ों के हाथ नहीं आए लेकिन एक मराठा रजवाड़े की जासूसी करने पर जम्बू क्षेत्र से पत्नी और बच्चे के साथ गिरफ्तार कर लिए गए।
19. वही, पृ. 42. 20. वही, पृ. 147. 21. वही, पृ. 43.
22. वही, पृ. 66 और 101.
23. वही, पृ. 92. 24. वही, पृ. 80. 25. वही, पृ. 11.
26. वही, पृ. 11. 27. वही, पृ. 21. 28. वही, पृ. 45.
29. वही, पृ. 21. 30. वही, पृ. 81.
31. Russell, William Howard, My Indian Mutiny Diary, Cassell & Company, London, p. 191.
32. Lowe, Thomas, Central India during the Rebellion of 1857 and 1858, Longman, Green, Longman and Roberts, London, 1860, p. 301.
33. Roberts, Fred, Letters Written during the Indian Mutiny, Macmillan & Co., London, 1924, pp. 118-119.

❐

भारत की खोज

डॉ. निर्मला जैन

(भारत एक संश्लिष्ट सांस्कृतिक इकाई के रूप में अत्यंत प्राचीन, जीवंत और गतिशील उपमहाद्वीप रहा है जिसने अपनी मेधा से विश्व को चमत्कृत और समृद्ध किया है। जहाँ तक राजनीति की बात है तो यहाँ अलग अलग क्षेत्रों में अलग अलग साम्राज्य रहे जिनका वैसा ही इतिहास रहा जैसा अलग अलग देशों का होता है– संघर्ष का, विमर्श का और सहयोग का। ब्रिटिश शासन काल में इसे एक राजनीतिक रूप से संगठित इकाई का स्वरूप मिला जिसे हम अपने देश भारत, हिंदुस्तान और इंडिया के नाम से जानते हैं। जो आज भी अपनी पुरातनता और नवीनता, एकता और अनेकता के अद्‌भुत संगम के कारण विश्व के लिए एक आश्चर्य है।

इसे समग्रता में देखना, समझना और समेटना सरल नहीं। इसकी सफल और प्रामाणिक कोशिश की पंडित जवाहरलाल नेहरू ने और नाम दिया– 'भारत की खोज'। इसका लेखन उन्होंने भारत के स्वाधीनता आँदोलन में अंग्रेज सरकार द्वारा अहमदनगर किले में जेल रखे जाने के दौरान किया। आज भी भारत को समझने के लिए यह पुस्तक विश्व में समादृत है।

सामान्य पाठकों विशेषकर किशोरों के लिए इसका सार्थक और सरल संक्षिप्तीकरण किया हिन्दी की वरिष्ठ समालोचक और साहित्यकार डॉ. निर्मला जैन ने। हम उनका आभार स्वीकार करते हुए इसे विश्वा के युवा पाठकों के लिए धारावाहिक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। –सं.)

भारत का प्राचीन रंगमंच

भारतीय रंगमंच अपने मूल में, संबद्ध विचारों में और अपने विकास में पूरी तरह स्वतंत्र था। इसका मूल उद्‌गम ऋग्वेद की उन ऋचाओं और संवादों में खोजा जा सकता है जिनमें एक हद तक नाटकीयता है। रामायण और महाभारत में नाटकों का उल्लेख मिलता है। कृष्ण-लीला से संबंधित गीत, संगीत और नृत्य में इसने आकार ग्रहण करना आरंभ कर दिया था। ई. पूर्व छठी या सातवीं शताब्दी के महान वैयाकरण पाणिनि ने कुछ नाट्य-रूपों का उल्लेख किया है।

रंगमंच की कला पर रचित नाट्यशास्त्र को ईसा की तीसरी शताब्दी की रचना कहा जाता है। ऐसे ग्रंथ की रचना तभी हो सकती थी, जब नाट्य कला पूरी तरह विकसित हो चुकी हो और नाटकों की सार्वजनिक प्रस्तुति आम बात हो।

अब यह माना जाने लगा है कि नियमित रूप से लिखे गए संस्कृत नाटक ई.पू. तीसरी शताब्दी तक पूरी तरह प्रतिष्ठित हो चुके थे। जो नाटक हमें मिले हैं उनमें पहले के ऐसे रचनाकारों और नाटकों का अक्सर हवाला दिया गया है जो अभी तक नहीं मिले हैं। ऐसे नाटककारों में एक भास था। इस शताब्दी के आरंभ में उसके तेरह नाटकों का एक संग्रह खोज में मिला है। अब तक मिले संस्कृत नाटकों में प्राचीनतम नाटक अश्वघोष के हैं। वह ईसवी सन् के आरंभ के ठीक पहले या बाद में हुआ था। ये ताड़-पत्र पर लिखित पांडुलिपियों के अंश मात्र हैं और आश्चर्य की बात यह कि ये गोबी रेगिस्तान की सरहदों पर तुर्फान में मिले हैं। अश्वघोष धर्मपरायण बौद्ध हुआ। उसने बुद्धचरित नाम से बुद्ध की जीवनी लिखी। यह ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हुआ और बहुत समय पहले भारत, चीन और तिब्बत में बहुत लोकप्रिय हुआ।

यूरोप को प्राचीन भारतीय नाटक के बारे में पहली जानकारी 1789 ई. में तब हुई जब कालिदास के शकुंतला का सर विलियम जोंस कृत अनुवाद प्रकाशित हुआ। सर विलियम जोंस के अनुवाद के आधार पर जर्मन, फ्रेंच, डेनिश और इटालियन में भी इसके अनुवाद हुए। गेटे पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा और उसने शकुंतला की अत्यधिक प्रशंसा की।

कालिदास को संस्कृत साहित्य का सबसे बड़ा कवि और नाटककार माना गया है। उसका समय अनिश्चित है, पर संभावना यही है कि वह चौथी शताब्दी के अंत में गुप्त वंश के चंद्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य के शासन काल में उज्जयिनी में था। माना जाता है कि वह दरबार के नौ रत्नों में से एक था। उसकी रचनाओं में जीवन के प्रति प्रेम और प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति आवेग का भाव मिलता है।

कालिदास की एक लंबी कविता है मेघदूत। एक प्रेमी, जिसे बंदी बनाकर उसकी प्रेयसी से अलग कर दिया गया है, वर्षा ऋतु में, एक बादल से अपनी तीव्र चाहत का संदेश उस तक पहुँचाने के लिए कहता है।

कालिदास से संभवत: काफी पहले एक बहुत प्रसिद्ध नाटक की रचना हुई थी– शूद्रक का मृच्छकटिकम् यानी मिट्टी की गाड़ी। यह एक कोमल और एक हद तक बनावटी नाटक है। लेकिन इसमें ऐसा सत्य है जो हमें प्रभावित करता है और हमारे सामने उस समय की मानसिकता और सभ्यता की झाँकी प्रस्तुत करता है।

400 ई. के लगभग, चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में एक और प्रसिद्ध नाटक लिखा गया। यह विशाखदत्त का नाटक मुद्राराक्षस था। यह विशुद्ध राजनीतिक नाटक था, जिसमें प्रेम या किसी पौराणिक कथा को आधार नहीं बनाया गया है। कुछ अर्थों में यह नाटक वर्तमान स्थिति में बहुत प्रासंगिक है।

राजा हर्ष, जिसने सातवीं सदी ई. में एक नया साम्राज्य कायम किया, नाटककार भी था। हमें उसके लिखे हुए तीन नाटक मिलते हैं। सातवीं सदी के आसपास ही भवभूति हुआ, जो संस्कृत साहित्य का चमकता सितारा था। वह भारत में बहुत लोकप्रिय हुआ और केवल कालिदास का ही स्थान उसके ऊपर माना जाता है।

संस्कृत नाटकों की यह धारा सदियों तक बहती रही लेकिन

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में गुणात्मक दृष्टि से स्पष्ट रूप से उसमें ह्रास दिखाई देने लगा।

दुष्यंत की याद में खोई कालिदास के प्रसिद्ध नाटक की शकुंतला : चित्र राजा रवि वर्मा

प्राचीन नाटकों की (कालिदास तथा अन्य लोगों के) भाषा मिली-जुली है– संस्कृत और उसके साथ एक या एकाधिक प्राकृत, यानी संस्कृत के बोलचाल में प्रचलित रूप। उसी नाटक में शिक्षित पात्र संस्कृत बोलते हैं और सामान्य अशिक्षित जन समुदाय, प्रायः स्त्रियाँ प्राकृत, हालाँकि उनमें अनुवाद भी मिलते हैं। यह साहित्यिक भाषा और लोकप्रिय कला के बीच समझौता था। फिर भी प्राचीन नाटक अक्सर राज-दरबारों या उसी प्रकार के अभिजात दर्शकों के लिए अभिजात्यवादी कला को प्रस्तुत करते हैं।

इस ऊँचे दर्जे के साहित्यिक रंगमंच के अलावा हमेशा एक लोकमंच भी रहा है। इसका आधार भारतीय पुराकथाएँ और महाकाव्यों से ली गई कथाएँ होती थीं। दर्शकों को इन विषयों की अच्छी तरह जानकारी रहती थी और इनका सरोकार नाटकीय तत्व से कहीं अधिक प्रस्तुति पर रहता था। ये अलग-अलग क्षेत्रों की बोलियों में रचे जाते थे, अतः उस क्षेत्र विशेष तक ही सीमित रहते थे। दूसरी ओर संस्कृत– नाटकों का चलन पूरे भारत में था क्योंकि उनकी भाषा पूरे भारत के शिक्षित समुदाय की भाषा थी।

संस्कृत भाषा की जीवंतता और स्थायित्व

संस्कृत अद्भुत रूप से समृद्ध भाषा है– अत्यंत विकसित और नाना प्रकार से अलंकृत। इसके बावजूद वह नियत और व्याकरण के उस ढाँचे में सख्ती से जकड़ी है जिसका निर्माण 2600 वर्ष पहले पाणिनि ने किया था। इसका प्रसार हुआ, संपन्न हुई, भरी-पूरी और अलंकृत हुई, पर इसने अपने मूल को नहीं छोड़ा। संस्कृत साहित्य के पतन के काल में भाषा ने अपनी कुछ शक्ति और शैली की सादगी खो दी।

सर विलियम जोंस ने 1784 में कहा था– "संस्कृत भाषा चाहे जितनी पुरानी हो, उसकी बनावट अद्भुत है, यूनानी भाषा के मुकाबले यह अधिक पूर्ण है, लातीनी के मुकाबले अधिक उत्कृष्ट है और दोनों के मुकाबले अधिक परिष्कृत है। पर दोनों के साथ वह इतनी अधिक मिलती-जुलती है कि यह संयोग आकस्मिक नहीं हो सकता। यह साफ़ पहचाना जा सकता है कि इन सभी भाषाओं का स्रोत एक ही है, जो शायद अब मौजूद नहीं रहा है।"

संस्कृत आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी है। उनका अधिकांश शब्दकोश और अभिव्यक्ति का ढंग संस्कृत की देन है। संस्कृत काव्य और दर्शन के बहुत से सार्थक और महत्त्वपूर्ण शब्द, जिनका विदेशी भाषाओं में अनुवाद नहीं किया जा सकता, आज भी हमारी लोक प्रचलित भाषाओं में जीवित हैं।

दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय उपनिवेश और संस्कृति

रवींद्रनाथ ठाकुर ने लिखा था, "मेरे देश को जानने के लिए उस युग की यात्रा करनी होगी जब भारत ने अपनी आत्मा को पहचानकर अपनी भौतिक सीमाओं का अतिक्रमण किया।"

हमें केवल बीते हुए समय में जाने की ही ज़रूरत नहीं है, बल्कि तन से नहीं तो मन से एशिया के विभिन्न देशों की यात्रा करने की ज़रूरत है जहाँ भारत ने अनेक रूपों में अपना विस्तार किया था।

पिछली चौथाई सदी के दौरान दक्षिण-पूर्वी एशिया के इस दूर तक फैले क्षेत्र के इतिहास पर बहुत प्रकाश डाला गया है। इसे कभी-कभी वृहत्तर भारत कहा गया है। लेकिन अब भी बहुत-सी कड़ियाँ नहीं मिलतीं। बहुत से अंतर्विरोध भी हैं। किंतु सामान्य रूप से सामग्री की कोई कमी नहीं है। भारतीय पुस्तकों के हवाले मिलते हैं, अरब यात्रियों के लिखे हुए वृत्तांत हैं और इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है चीन से प्राप्त ऐतिहासिक विवरण। इसके अलावा बहुत से पुराने शिलालेख और ताम्र पत्र हैं। जावा और बाली में भारतीय स्रोतों पर आधारित समृद्ध साहित्य है जिसमें अक्सर भारतीय महाकाव्यों और पुराकथाओं का भावानुवाद किया गया है। यूनानी और लातीनी स्रोतों से भी कुछ सूचनाएँ मिली हैं। लेकिन इन सबसे बढ़कर प्राचीन इमारतों के विशाल खंडहर हैं– विशेषकर अंगकोर और बोरोबुदुर में।

ईसा की पहली शताब्दी से लगभग 900 ईसवी तक उपनिवेशीकरण की चार प्रमुख लहरें दिखाई पड़ती हैं। इनके बीच-बीच में पूरब की ओर जाने वाले लोगों का सिलसिला अवश्य रहा होगा। इन साहसिक अभियानों की सबसे विशिष्ट बात यह थी कि इनका आयोजन स्पष्टतः राज्य द्वारा किया जाता था। दूर-दूर तक फैले इन उपनिवेशों की शुरुआत लगभग एक साथ होती थी और ये उपनिवेश युद्ध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थानों पर और महत्त्वपूर्ण मार्गों पर कायम किए जाते थे। इन बस्तियों का नामकरण पुराने भारतीय नामों के आधार पर किया गया। इस तरह जिसे अब कंबोडिया कहते हैं, उस समय कंबोज कहलाया।

जावा स्पष्ट रूप से 'यवद्वीप' या जौ का टापू है। यह आज भी एक अन्न विशेष का नाम है। प्राचीन पुस्तकों में आए हुए नामों का संबंध भी प्राय: खनिज, धातु या किसी उद्योग या खेती की पैदावार से होता है। इस नामकरण से खुद-ब-खुद ध्यान व्यापार की ओर जाता है।

यह व्यापार ईसा पूर्व तीसरी और दूसरी शताब्दियों में धीरे-धीरे

बढ़ गया। इन साहसिक व्यवसायियों और व्यापारियों के बाद धर्म प्रचारकों का जाना शुरू हुआ होगा, क्योंकि यह समय अशोक के ठीक बाद का समय था। संस्कृत की प्राचीन कथाओं से और यूनानी और अरबी दोनों में प्राप्त वृत्तांतों से पता लगता है कि भारत और सुदूर पूरब के देशों के बीच कम-से-कम ईसा की पहली शताब्दी में नियमित समुद्री व्यापार होता था।

भरत मुनि का नाट्यशास्त्र

यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में जहाज़ बनाने का उद्योग बहुत विकसित और उन्नति पर था। उस समय में बनाए गए जहाज़ों का कुछ ब्यौरेवार वर्णन मिलता है। बहुत से भारतीय बंदरगाहों का उल्लेख मिलता है। दूसरी और तीसरी शताब्दी के दक्षिण भारतीय (आंध्र) सिक्कों पर दोहरे - पाल वाले जहाज़ों का चिह्न अंकित है। अजंता के भित्ति चित्रों में लंका-विजय और हाथियों को ले जाते हुए जहाज़ों के चित्र हैं।

महाद्वीप के देशों बर्मा, स्याम और हिंद- चीन पर चीन का प्रभाव अधिक था, टापुओं और मलय प्रायद्वीप पर भारत की छाप अधिक थी। आमतौर पर शासन-पद्धति और सामान्य जीवन-दर्शन चीन ने दिया और कला भारत ने।

इन भारतीय उपनिवेशों का इतिहास तकरीबन तेरह सौ साल या इससे भी कुछ अधिक का है– ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी से आरंभ होकर पंद्रहवीं शताब्दी के अंत तक।

विदेशों पर भारतीय कला का प्रभाव

भारतीय सभ्यता ने विशेष रूप से दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में अपनी जड़ें जमाईं। इस बात का प्रमाण आज वहाँ सब जगह मिलता है, चंपा, अंगकोर, श्रीविजय, भज्जापहित और दूसरे स्थानों पर संस्कृत के बड़े-बड़े अध्ययन केंद्र थे। वहाँ जिन राज्यों का उदय हुआ उनके शासकों के नाम विशुद्ध भारतीय और संस्कृत नाम हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे विशुद्ध भारतीय थे, पर इसका अर्थ यह अवश्य है कि उनका भारतीयकरण किया गया था। राजकीय समारोह भारतीय ढंग से संस्कृत में संपन्न किए जाते थे। राज्य के सभी कर्मचारियों के पास संस्कृत की प्राचीन पदवियाँ थीं और इनमें से कुछ पदवियाँ और पदनाम न केवल थाईलैंड में बल्कि मलाया की मुस्लिम रियासतों में भी अभी तक चले आ रहे हैं। इंडोनेशिया के इन स्थानों के प्राचीन साहित्य भारतीय पुराकथाओं और गाथाओं से भरे हुए हैं। जावा और बाली के मशहूर नृत्य भारत से लिए गए हैं। बाली के छोटे से टापू ने अपनी भारतीय संस्कृति को अभी तक बहुत सीमा तक कायम रखा है, यहाँ तक कि हिंदू धर्म भी वहाँ चला आ रहा है। फिलिपीन द्वीपों में लेखन-कला भारत से ही गई है।

कंबोडिया में वर्णमाला दक्षिण भारत से ली गई है और बहुत से संस्कृत शब्दों को थोड़े से हेर-फेर के साथ ले लिया गया है। दीवानी और फ़ौजदारी के कानून भारत के प्राचीन स्मृतिकार मनु के कानूनों के आधार पर बनाए गए हैं और इन्हें बौद्ध प्रभाव के कारण कुछ परिवर्तनों के साथ संहिताबद्ध करके कंबोडिया की आधुनिक कानून व्यवस्था में ले लिया गया है।

लेकिन भारतीय प्रभाव सबसे अधिक प्रकट रूप से प्राचीन भारतीय बस्तियों की भव्य कला और वास्तुकला में दिखाई पड़ता है। इस प्रभाव से अंगकोर और बोरोबुदुर की इमारतें और अद्‌भुत मंदिर तैयार हुए। जावा में बोरोबुदुर में बुद्ध की जीवन-कथा पत्थरों में उत्कीर्ण है। दूसरे स्थानों पर नक्काशी करके विष्णु, राम और कृष्ण की कथाएँ अंकित की गई हैं।

अंगकोरवट के विशाल मंदिर के चारों तरफ़ विशाल खंडहरों का विस्तृत क्षेत्र है। उसमें बनावटी झीलें, पोखरें और नहरें हैं जिनके ऊपर पुल बने हैं और एक बहुत बड़ा फाटक है जिस पर एक वृद्धाकार सिर पत्थर में खुदा है। यह एक आकर्षक मुस्कराता हुआ किंतु रहस्यमय कंबोडियाई देवतुल्य चेहरा है। इस चेहरे की मुस्कान अद्‌भुत रूप से मोहक और विचलित करने वाली है।

अंगकोर की प्रेरणा भारत से मिली पर उसका विकास ख्मेर प्रतिभा ने किया, या कि दोनों के परस्पर मेल से यह अजूबा पैदा हुआ। कंबोडिया के जिस राजा ने इसे बनवाया उसका नाम जयवर्मन (सप्तम) था, जो ठेठ भारतीय नाम है।

भारतीय कला का भारतीय धर्म और दर्शन से इतना गहरा रिश्ता है कि जब तक किसी को उन आदर्शों की जानकारी न हो जिनसे भारतीय मानस शासित होता है तब तक उसके लिए इसको पूरी तरह सराहना संभव नहीं है। भारतीय कला में हमेशा एक धार्मिक प्रेरणा होती है, एक पारदृष्टि होती है, कुछ वैसी ही जिसने संभवतः यूरोप के महान गिरजाघरों के निर्माताओं को प्रेरित किया था। सौंदर्य की कल्पना आत्मनिष्ठ रूप में की गई है, वस्तुनिष्ठ रूप में नहीं; वह आत्मा से संबंध रखने वाली चीज़ है, भले ही वह रूप या पदार्थ में भी आकर्षक आकार ग्रहण कर ले। यूनानियों ने सौंदर्य से निस्वार्थ भाव से प्रेम किया। उन्हें सौंदर्य में केवल आनंद ही नहीं मिलता था, वे उसमें सत्य के दर्शन भी करते थे। प्राचीन भारतीय भी सौंदर्य से प्रेम करते थे, पर वे हमेशा अपनी रचनाओं में कोई गहरा अर्थ भरने का प्रयत्न करते थे।

भारतीय कविता और संगीत की तरह कला में भी कलाकार से यह उम्मीद की जाती थी कि वह प्रकृति की सभी मनोदशाओं से तादात्म्य स्थापित करे ताकि वह प्रकृति और विश्व के साथ मनुष्य के मूलभूत सामंजस्य की अभिव्यक्ति कर सके। भारत की विशेषता उसकी मूर्तिकला और स्थापत्य में है, जिस तरह चीन और जापान की विशेषता उनकी चित्रकला में।

भारतीय संगीत, जो यूरोपीय संगीत से बहुत भिन्न है, अपने ढंग से बहुत विकसित था। इस दृष्टि से भारत का बहुत विशिष्ट स्थान है और संगीत के क्षेत्र में चीन और सुदूर पूर्व के अलावा उसने एशियाई संगीत को बहुत दूर तक प्रभावित किया था।

एशिया के दूसरे देशों की तरह भारत में भी कला के विकास पर, गढ़ी हुई मूर्तियों के विरुद्ध धार्मिक पूर्वाग्रह का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। वेद मूर्ति-पूजा के विरुद्ध थे और बौद्ध धर्म में भी अपेक्षाकृत बाद के समय में ही बुद्ध की मूर्तियाँ और चित्र बनाए जा सके। मथुरा के संग्रहालय में बोधिसत्व की एक विशाल शक्तिशाली और प्रभावशाली पाषाण प्रतिमा है। इसका निर्माण ईसवी सन् के आरंभ के आस-पास कुषाण युग में हुआ था।

भारतीय कला अपने आरंभिक काल में प्रकृतिवाद से भरी है, जो कुछ अंशों में चीनी प्रभाव के कारण हो सकता है। भारतीय कला के इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं पर चीनी प्रभाव दिखाई पड़ता है।

चौथी से छठी शताब्दी ईसवी में गुप्तकाल के दौरान, जिसे भारत का स्वर्ण युग कहा जाता है, अजंता की गुफ़ाएँ खोदी गईं और उनमें भित्ति चित्र बनाए गए। बाग और बादामी की गुफ़ाएँ भी इसी काल की हैं।

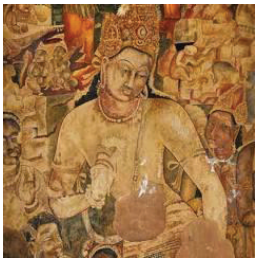

अवलोकितेश्वर : अजंता की गुफ़ाएँ

अजंता हमें किसी स्वप्न की तरह दूर किंतु असल में एकदम वास्तविक दुनिया में ले जाती है। इन भित्ति चित्रों को बौद्ध भिक्षुओं ने बनाया था। बहुत समय पहले उनके स्वामी ने कहा था– स्त्रियों से दूर रहो, उनकी तरफ़ देखो भी नहीं, क्योंकि वे खतरनाक हैं। इसके बावजूद इन चित्रों में स्त्रियों की कमी नहीं है– सुंदर स्त्रियाँ, राजकुमारियाँ, गायिकाएँ, नर्तकियाँ, बैठी और खड़ी, शृंगार करती हुईं या शोभा यात्रा में जाती हुईं। ये चित्रकार भिक्षु संसार को और जीवन के गतिशील नाटक को कितनी अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने ये चित्र उतने ही प्रेम से बनाए हैं जितने प्रेम से उन्होंने बोधिसत्व को उनकी शांत, लोकोत्तर गरिमा में चित्रित किया है।

सातवीं-आठवीं शताब्दियों में ठोस चट्टान को काटकर एलोरा की विशाल गुफ़ाएँ तैयार हुईं, जिनके बीच में कैलाश का विशाल मंदिर है। यह अनुमान करना कठिन है कि इंसान ने इसकी कल्पना कैसे की होगी या कल्पना करने के बाद अपनी कल्पना को रूपाकार कैसे दिया होगा। एलीफेंटा की गुफ़ाएँ भी इसी समय की हैं जहाँ प्रभावशाली और रहस्यमयी त्रिमूर्ति बनी है। दक्षिण भारत में महाबलीपुरम् की इमारतों का निर्माण भी इसी समय हुआ था।

महाबलीपुरम के भित्ति शिल्प

एलिफेंटा की गुफ़ाओं में नटराज शिव की एक खंडित मूर्ति है, जिसमें शिव नृत्य की मुद्रा में हैं। हैवेल का कहना है कि इस क्षत-विक्षत अवस्था में भी यह मूर्ति भीमाकार शक्ति का मूर्त रूप है और इसकी कल्पना अत्यंत विशाल है।

ब्रिटिश संग्रहालय में विश्व का सृजन और नाश करते हुए नटराज शिव की एक और मूर्ति है। एप्सटीन ने लिखा है कि उनकी विशाल लयात्मकता काल के विराट युगों का आह्वान करती है।

जावा में बोबुदुर से बोधिसत्व का एक सिर कोपेनहेगन के ग्लिपटोटेक ले जाया गया है। रूपगत सौंदर्य की दृष्टि से तो यह सिर सुंदर है ही, इसमें कुछ और गहरी बात है जो बोधिसत्व की शुद्ध आत्मा को इस तरह उद्घाटित करती है जैसे दर्पण में प्रतिबिंब। वह एक ऐसा चेहरा हैं, जिसमें समुद्र की गहराइयों की प्रशांति, निरभ्र नीले आकाश की स्वच्छता और इंसानी पहुँच से परे का परम सौंदर्य मूर्तिमान हुआ है। ❐

श्रद्धांजलि

ईद के मुबारक दिन 28 मई को प्रसिद्ध शायर बशीर बद्र का 91 साल की उम्र में निधन

उजाले अपनी यादों के हमारे साथ रहने दो
न जाने किस गली में ज़िंदगी की शाम हो जाए

दुश्मनी जम कर करो लेकिन ये गुंजाइश रहे
जब कभी हम दोस्त हो जाएँ तो शर्मिंदा न हों

कुछ तो मजबूरियाँ रही होंगी
यूँ कोई बेवफ़ा नहीं होता

यहाँ लिबास की क़ीमत है आदमी की नहीं
मुझे गिलास बड़े दे शराब कम कर दे

सच्चिदानंद राउतराय

प्रस्तुति : डॉ. दीपक पाण्डेय

ओड़िया साहित्यकार सच्चिदानंद राउतराय को साहित्यिक अवदान के लिए 1986 का ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पित किया गया। आप ओड़िया के सर्वाधिक लब्धप्रतिष्ठ कवियों में से एक हैं। ओड़िया काव्य, आख्यान और साहित्य-समीक्षा, सभी क्षेत्रों में राउतराय जी का सार्थक योगदान रहा है परंतु उन्होंने एक कवि के रूप में समकालीन साहित्य-बोध पर गहरी छाप छोड़ी है और उदीयमान कवियों को अत्यधिक प्रभावित किया है ।'पाथेय' और 'पांडुलिपि' संग्रहों के माध्यम से उन्होंने ओड़िया साहित्य में नयी कविता और आधुनिक युग का सूत्रपात किया और यह प्रमाणित किया कि आलंकारिकता और संगीतात्मक सम्मोहन से उन्मुक्त रहकर भी कविता, मात्र अपनी गरिमा और सहज सामर्थ्य से, पाठक की कल्पना को मोहित कर सकती है। सच्चिदानंद राउतराय के काव्य में एक प्रखर मानवतावाद और आध्यात्मिक उत्थान के प्रति उन्मुखता अंतर्निहित है। मानवीय गरिमा और उन्मुक्त अभय उनकी कविता का मूलमंत्र है। उनका गद्य-साहित्य भी समाज-सापेक्ष जीवन की अभिव्यक्ति करता है। उपन्यास 'चित्रजीव' में हास्य और व्यंग्य का अद्भुत संयोजन है। वास्तव में राउतराय का संपूर्ण साहित्य एक ह्रासोन्मुख समाज-व्यवस्था के विरुद्ध मानवीय अधिकारों की निर्द्वंद्व घोषणा है।

सच्चिदानंद राउतराय का जन्म 13 मई,1916 को ओड़िशा के पुरी ज़िले में खुर्दा के निकट गुरुगंज में हुआ। आपने विद्यार्थी जीवन से ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम, देशी राज्यों के विरुद्ध जनता के संघर्ष, छात्र तथा किसान आंदोलनों में सक्रिय भाग लिया। आमजन के प्रति आपकी प्रतिबद्धता ने जहाँ आपको पाठकों के मध्य लोकप्रिय बनाया, वहीं औपनिवेशिक शासकों को क्रोधित भी किया परिणामत: दो बार जेल जाना पड़ा और आपकी काव्यकृतियों-'रक्त शिखा' तथा 'उठ जाग वोकी बंदी' को प्रतिबंधित किया गया। राउतराय ने 1939 में स्नातक उपाधि प्राप्त की। 1952 में कोलंबो योजना के अंतर्गत आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में तथा 1955 में आई.एल.ओ., जेनेवा में आपने औद्योगिक संबंध और समाज-कल्याण में प्रशिक्षण प्राप्त किया। राउतराय ने अल्प वय में ही लिखना प्रारंभ कर दिया था पहला कविता संग्रह 16 वर्ष की आयु में प्रकाशित हो गया; 'बाजी राउत' नामक लम्बी कविता से आपको काफ़ी प्रसिद्धि मिली। कविता संग्रह 'पल्ली श्री' ने राउतराय को साहित्याकाश में स्थापित किया। इसमें ग्रामीण ओड़िशा के जीवन और समाज के बारे में कविताएँ हैं। ग्रामीण जीवन की अपनी स्वाभाविक सहजता और मनोहरता के बारे में अब तक लिखी गयीं कविताओं में ये कविताएँ आज भी श्रेष्ठ मानी जाती हैं। आपके कविता संग्रह 'कविता : 1962' में नयी कविता की भूमिका पर 200 पृष्ठों का एक परिशिष्ट है, जो कवियों के लिए सिद्धांत स्थापन करता है। ग्राम कविताओं की अपनी शृंखला में आपने न केवल शांतिपूर्ण और मनोहर ग्रामीण जीवन के गीत गाये हैं, बल्कि किसान-जीवन की कठिनाइयों और कष्टों को भी उजागर किया है। राउतराय हमेशा जीवन और स्वतंत्रता और न्याय के पक्षधर रहे और एक ऐसे समाज की आशा की, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र और समान हो और गरिमा तथा विश्वास के साथ रह सके। वैयक्तिक भावनाओं और सामाजिक चेतना के सूक्ष्म सम्मिश्रण ने आपकी कविताओं को शक्ति और क्षमता प्रदान की है। नवीन बिंबों और रूपकों के उपयोग ने आपकी कविता को अपने ही आकर्षण में रँग दिया है।

रचनाएँ

काव्य: पाथेय, पूर्णिमा, पल्ली-श्री, रक्त-शिखा, बाजी राउत, अभिजान, पाण्डुलिपि, हासान्त, भानुमोतीर देश, स्वागत, एशियार स्वप्न, मायकोवोस्की । कहानियाँ : मान्कर्द तथा अन्यान्य गल्प, नूतन गल्प। उपन्यास : मसानीर फूला, माटीर ताज, छई, चित्रगीवा आत्मकथा : उत्तरा फाल्गुनी

समालोचना : साहित्य-विचार और मूल्यबोध, आधुनिक साहित्य। शोधकार्य : साहित्य मूल्यबोध (साहित्य में मूल्यों के विकास का अध्ययन, प्राग्वैदिक युग से सत्रहवीं शती के मध्य तक, रीति युग), जयदेव रामायण बनाम महाभारत, संकलन : सची राउतराय ग्रन्थमाला, भाग-1 (कविता), सची राउतराय ग्रन्थमाला, भाग-2 (गद्य)।

पुरस्कार

• पद्मश्री 1962 • साहित्य अकादमी पुरस्कार 1963 • ज्ञानपीठ पुरस्कार 1986 • सोवियत लैंड पुरस्कार 1965 • आन्ध्र विश्वविद्यालय एवं ब्रह्मपुर विश्वविद्यालय द्वारा डॉक्टरेट की मानद उपाधि • अध्यक्ष, उड़ीसा साहित्य अकादमी • सदस्य, फिल्म सेंसर बोर्ड

अभिभाषण के अंश :

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार, भारतीय साहित्य यद्यपि कई भाषाओं में लिखा जाता है, मगर उसकी आत्मा एक है। जैसा कि हम जानते हैं भारत बहुत से भाषाई क्षेत्रों में विभाजित है और इसके निवासी हमारे संविधान में निर्दिष्ट सभी भाषाएँ बोलते हैं। प्रत्येक भाषा का अपना विशिष्ट साहित्य है। लेकिन इसके बावजूद प्रत्येक साहित्य में व्यक्त विचार, भाव और संवेदनाएँ समान है। समान मानवीय नियति की भावना तथा हमारी महान् सांस्कृतिक विरासत की जागरूकता इन समस्त

साहित्यों में प्रवाहित होती है। पंडित नेहरू ने इस स्थिति को और भी स्पष्ट किया है। उनके अनुसार, भारत की समस्त भाषाओं की जड़ें तथा प्रेरणाएँ अधिकांशतः एक-सी हैं और जिस मानसिक परिवेश में उनका विकास हुआ है, एक-सा ही है। भारत का प्रत्येक साहित्य-चाहे वह हिंदी, उर्दू, तेलुगु, तमिल, मलयालम, गुजराती, मराठी अथवा बंगला, ओड़िया या असमिया किसी भी भाषा में हो, समग्र रूप से देश की वैचारिकता और संस्कृति का एक ही प्रकार से प्रतिनिधित्व करता है। इसके साथ-साथ हम सबने स्वातंत्र्य पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काल दोनों में ही, विदेशी शासन के अधीन तथा पश्चिमीकरण और औद्योगीकरण के प्रभावों के अंतर्गत एक ही प्रकार के अनुभवों तथा स्थितियों में भागीदारी की है। अतः भारत की प्रत्येक भाषा के साहित्य में सामाजिक परिस्थितियों के साथ-साथ सामाजिक विषयवस्तु की दृष्टि से समानता पाई जाती है।

साहित्य समस्त भाषाई व्यवधानों से परे होता है और यह मनुष्य मात्र की समान विरासत है। हमारे देश के साहित्यिक समुदायों के बीच अभी भी भाषाई व्यवधानों ने संप्रेषणीयता की खाई पैदा कर रखी है। अतः अब समय आ गया कि समस्त संबंधित व्यक्तियों द्वारा भारत की प्रत्येक भाषा की महत्त्वपूर्ण कृतियों के अंग्रेज़ी, और जहाँ संभव हो हिंदी अनुवाद कराने के लिए कदम उठाये जाएँ ताकि उन्हें न केवल हमारे देश के पाठकवर्ग द्वारा अपितु दुनिया के अन्य देशों के पाठकों द्वारा भी समझा और पसंद किया जा सके और भारतीय साहित्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना समुदाय स्थान और अपेक्षित मान्यता प्राप्त कर सके। इससे उन्हें मौजूदा भाषाई रुकावटों के बावजूद देश के भीतर भी व्यापक पाठक-वर्ग मिलने में सहायता मिल सकेगी।

यह सचमुच नियति की विडंबना ही है कि कुछ ऐसे देशों की, जो भारतीय उपमहाद्वीप से क्षेत्र और जनसंख्या दोनों में ही बहुत छोटे हैं, यथा चिली, आइसलैंड, नाइजीरिया आदि, साहित्यिक कृतियों ने पहले ही विश्वव्यापी मान्यता प्राप्त कर ली है, जबकि भारतीय साहित्य की ओर किसी का ध्यान भी नहीं जाता। हमारे देश में कोई लेखक आर्थिक दृष्टि से स्वयं को सुरक्षित अनुभव नहीं कर पाता। यदि वह कवि है तो स्थिति और भी दयनीय है। समाज तथा सरकार को, जो कि लेखक के ट्रस्टी और अंगरक्षक हैं, लेखकों का ध्यान रखना चाहिए क्योंकि लेखक समाज के लिए लिखता है, अपने तथा अपने परिवार के सदस्यों के लिए नहीं। अब मैं आधुनिक साहित्य पर आता हूँ। आधुनिकता अथवा आधुनिकतावाद परंपरा की तार्किक एवं ऐतिहासिक परिणति है। यह कोई पृथक् अथवा प्रासंगिक क्रिया नहीं है, जिसका संदर्भ केवल स्थायी हो। यह उस फैशनवाद में परिणत हो जाता है जो नये अथवा आधुनिक के लिए एक प्रकार की सनक होता है। इसलिए केवल मानवतावाद ही आधुनिकतावाद का सार तया एक रचनात्मक घटक हो सकता है। प्रत्येक युग अथवा समाज का अपना अनूठा विन्यास अथवा आकृति होती है जिसका अपना विशिष्ट धारणा संबंधित ढांचा होता है, मूल्य प्रणाली तथा सौंदर्य, संवेदनाएँ होती है। किसी युग अथवा समाज की संस्कृति को सही समझने के लिए संस्कृति के इन तीन आयामों- परिज्ञानशीलता, नैतिकता और सौंदर्यबोध को उनके गतिशील संबंध तथा प्रतिक्रियाओं में पूर्ण रूप से समझने की आवश्यकता है। प्रत्येक समाज की एक सामाजिक-आर्थिक संरचना भी होती है। मार्क्स ने दर्शाया है कि सामाजिक-आर्थिक संरचना में समाज की सांस्कृतिक आकृति यथा कला, साहित्य, दर्शन तथा नैतिक-शास्त्र आदि को प्रभावित किया है।

आधुनिक साहित्य को संपूर्ण रूप से अकेलेपन और अलगाव की भावना से ग्रस रखा। इस अकेलेपन के लक्षण है– नैराश्य (धन-वैभव के मध्य नैराश्य) की जीवित नहीं रह सकता। भावनाएँ तथा प्रवृत्तियाँ, विकृति के अधिकांशतः जुड़ाव, हताशा, विदूप में आस्था, विरक्ति तया संतप्त मानववाद जो मानवीय दूरावस्या को स्वीकार करने तथा व्यक्ति की स्वयं की विकृतियों से पैदा होते हैं, आधुनिक साहित्य में व्यापक रूप से वर्णित हुए हैं। आधुनिक कवि अपना उपहास किये जाने के भय से, भावुक होने से अस्वाभाविक रूप से कतराता है। अधिकतर आधुनिक कविता में प्रेम के प्रति एक ही वक्तव्य उपलब्ध नहीं है, क्योंकि जिस चीज को भावकता मनोविज्ञान (विशेषतः फ्रॉयड और युग के मनोविश्लेषण) करने में कोई छोटी भूमिका नहीं निभाई है। मनोविज्ञान ने विवेक के ऊपर अविवेक की सत्ता का संकेत करके उसके आत्मसम्मान तथा आत्मविश्वास को कम किया है। बहुत से लोगों के लिए मनोविज्ञान ने उस परिवेश को भी विषैला बनाया है, जहाँ कि वे रहते हैं। आधुनिक युग, जो कि बौद्धिक आधिपत्य के अधीन है, के पास अपनी कोई दृष्टि नहीं है, क्योंकि दृष्टि उन्हें प्राप्त होती है जो अपनी बुद्धि को अन्तर्ज्ञान अथवा सहज बोध के प्रति समर्पित करने में समर्थ होते हैं। ये समस्त संवेदनाएँ आधुनिक साहित्य में कविता में, कथा-साहित्य में तथा ऊलजलूल नाटकों में-मुखरित होती है।

आधुनिक साहित्य विसंगति और बेतुकेपन की दिशा में जा रहा है क्योंकि विज्ञान, जो कि विवेक-संगत का मुख्य आधार था, अब तार्किक रूप से असंभव घटनाओं की संभावना में विश्वास करता है। आधुनिक साहित्य में हम बौद्धिकता की अन्य संधि के अंत में पहुँच गये हैं जिस पर मृत्यु की मोहर लग गई और चारों ओर दीवार खड़ी होना। बौद्धिकता मृत्यु से अधिक किसी अन्य सार्थकता तक नहीं पहुँच सकती। मृत्यु से परे जाने के लिए व्यक्ति को अंतर्ज्ञान से होकर गुज़रना होगा।

औसत पाठक, यहाँ तक कि भारत में उच्च शिक्षा-प्राप्त पाठक भी आधुनिक साहित्य को, विशेषकर आधुनिक कविता को नहीं समझते, इसलिए उसे पसंद भी नहीं करते। सामान्य शिकायत यह है

कि यह हृदय को प्रभावित नहीं करती यद्यपि इसमें कुछ सुंदर विचार होते हैं। मैंने अपने जीवन के बहुत से वर्ष जन-आंदोलनों में व्यतीत किये और राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलनों, सामंती राज्यों के जन-आंदोलनों तथा छात्र और किसान आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया। उस समय मेरी कुछ कविताएँ जब्त कर ली गई थीं लेकिन उन्होंने जनता के हृदय में निश्चित ही अपनी गूंज पैदा कर दी थी। मैंने रमणीय ग्रामीण दृश्यों को अंकन करने वाली मधुर कविताएँ भी लिखी हैं और अपने ग्रामवासियों के सरल जीवन तथा जीवन से जुड़े शांत ग्रामीण प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण किया है। वे जनता के एक बहुत बड़े वर्ग में व्यापक रूप से लोकप्रिय थीं और उनमें से बहुत-सी रचनाएँ लोगों को याद हो गई थीं। मेरी आधुनिक कविताओं में मौखिक स्वर को प्राथमिक महत्त्व दिया गया है। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि मेरी आधुनिक कविताएँ जो विभिन्न वादों यथा बिंबवाद, अतियथार्थवाद, प्रतीकवाद आदि के अंतर्गत वर्गीकृत की गई हैं, औसत पाठकों का हृदयस्पर्श करने में असमर्थ रही हैं।

वर्तमान युग कला और साहित्य के विकास के लिए पूर्णतः प्रतिकूल है क्योंकि यह विरोधाभासों और परस्पर विरोधों से भरपूर चित्र प्रस्तुत करता है। हर कहीं भ्रष्टाचार और शोषण की शक्तियों का बोलबाला है और नैतिक मूल्यों तथा शैक्षणिक पाठ्यक्रम, साहित्य तथा अन्य जीवनदायी मनःशक्तियों, यथा-दर्शन, इतिहास तथा सामाजिक विज्ञानों, जिनका तीव्रता से ह्रास हो रहा है, को भयंकर खतरे से बचाया जाना चाहिए, अन्यथा इससे राष्ट्रीय एकता संकट में पड़ सकती है।

भाषा और धर्म, जो कि राष्ट्र के एकीकरण के शक्तिशाली घटक थे, अब राष्ट्र को खंड-खंड करने तथा अव्यवस्था फैलाने के हथियारों के रूप में इस्तेमाल किए जा रहे हैं। इस संदर्भ में साहित्य को एक सार्थक भूमिका अदा करनी है, जिससे राष्ट्रीय एकता को मजबूत किया जा सके और उन पतनोन्मुख सामाजिक स्थितियों को, जिन्होंने अपनी उपयोगिता समाप्त कर दी है, पूर्णतः बदला जा सके। कवियों और लेखकों को आत्मा का अभियंता कहा जाता है। वे हमारे सपनों के नए

भारत का निर्माण करने में निश्चय ही बहुत बड़ा योगदान कर सकते हैं।

(आभार : ज्ञानपीठ पुरस्कार- संपादक बिशन टंडन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन)

सामयिक

ग़दर पार्टी : स्वातंत्र्य-गगन का ज्वाज्वल्यमान उल्कापिंड

सीताराम येचुरी

एक सहस्राब्दी पूर्व भी भारत के सार्थवाह व्यापार के लिए दक्षिण-पूर्व एशिया के लिए सागर संतरण करते थे। चीन से बौद्ध धर्म के कारण वैचारिक आदान-प्रदान रहा। अफ्रीका के पूर्वी तट से भारत के पश्चिमी भाग जल मार्ग से जुड़े। स्थल मार्ग से अरब देशों से होते हुए योरप तक संपर्क के स्पष्ट सूत्र मिलते हैं जिन्होंने हमें दुनिया से जोड़े रखा। गिरमिटिया मज़दूरों की अपनी एक दर्दनाक और साहसी कथा है। सबसे नई तरह का संपर्क नई दुनिया (अमरीका) से हुआ। 19वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में धर्म प्रचारकों, शैक्षिक जिज्ञासुओं का अमरीका जाना एक नए प्रकार के संपर्कों का अध्याय खोलता है। इनमें सबसे अद्‌भुत था वहाँ अपने लिए एक बेहतर भविष्य तलाशने के लिए गए उन विपन्न लोगों का जिनमें अधिकतर पंजाब के भूमिहीन और गरीब किसान थे, जिन्हें परिस्थितियों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का 'मरणान्तक केसरिया योद्धा' बना दिया। जिसे 'ग़दर पार्टी' के नाम से जाना जाता है।

आज जब साधनों के बल पर इतिहास को बदलने के उपक्रम किये जा रहे हैं, स्वयं को कालचक्र पर अंकित करने का दुश्चक्र चल रहा है तब बलिदानी लोगों के छोटे से अल्पज्ञात इतिहास से लोगों के परिचित होने की या आशा की जाए।

जब इन्हें 'मरणान्तक केसरिया योद्धा' कहा जाता है तो राजस्थान के उन वीरों की याद आती है जो 'केसरिया' (वीरता का नशा) पीकर भगवा वस्त्र धारण करके अंतिम युद्ध लड़ने के लिए किले के द्वार खोलकर निकल पड़ते थे। ऐसे ही युद्ध के लिए तो गीता में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम् जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चयः ।। 37-4 ।।

हुआ यूँ कि 1897 में महारानी विक्टोरिया के शासन की हीरक जयंती मनाई गई। उसमें भाग लेने के लिए कुछ सिख-पंजाबी सैनिकों को चुना गया। समारोह के बाद उहे ब्रिटिश उपनिवेश कनाडा की सैर भी कराई गई। कनाडा में आज भी लोग कम और ज़मीन बहुत ज्यादा है। समारोह से लौटे बहुत से लोगों ने सोचा कि वे भी ब्रिटिश प्रजा हैं और उन्हें कनाडा में बसकर अपना भाग्य संवारने का अधिकार है। इसी सोच के तहत शंघाई, हांगकांग की तरफ से, जहाँ सैनिक के रूप में भारतीयों का आना जाना हुआ था और जहाँ सिखों के गुरुद्वारे भी बन चुके थे, अमरीका जाने की जुगत शुरू हुई जहाँ से कनाडा और उत्तरी अमरीका का पश्चिमी तट निकट पड़ता था।

यह पहले से तय नहीं होता था कि ऐसे जाने वाले इन लोगों को अमरीका या कनाडा में प्रवेश मिल ही जाता था। यह वहाँ के सम्बन्धित अधिकारियों की मर्ज़ी पर

निर्भर होता था।

1905 में कनाडा में कोई एक सौ भारतीय थे। 1907 में दो हजार और 1908 में अढाई हजार हो गए। बाद में कनाडा सरकार की पाबंदियों के कारण उन्होंने अमरीका के कनाडा से लगे राज्यों ऑरेगोन, वाशिंगटन और कैलिफोर्निया की तरफ पलायन शुरू किया। यहाँ भी दुर्भाग्य ने पीछा नहीं छोड़ा। इसी काल में चीन, जापान के श्रमिक भी आना शुरू हो चुके थे, काले गुलाम तो पहले से थे ही। नस्ल भेद के कारण जहाँ धार्मिक लोग असभ्य, गंदे मानते थे, वहीं वहाँ के मजदूरों ने इन्हें अपनी नौकरी छीनने वाला समझा। ऐसे में कम से कम वेतन पर कम करना, स्थानीय लोगों के गुस्से और अवहेलना का सामना करना इनकी नियति बन गई।

ऐसे में सोहन सिंह भकना के दो अनुभव देखें– कनाडा से आये प्रोफ़ेसर तेजासिंह को लेकर जब वे एक होटल में खाना खाने गए तो वहाँ कुछ विद्यार्थियों ने उन्हें कई देशों के झंडे दिखाकर पूछा– तुम्हारे देश का झंडा कौनसा है? जब उन्होंने ब्रिटेन के झंडे यूनियन जैक पर हाथ रखा तो वे उन्हें इन्डियन स्लेव कहकर चिढ़ाने लगे। इसी तरह जब भकना अपने एक दोस्त के साथ एक मिल में काम माँगने गए तो उसने इन्हें डाँटते हुए कहा– काम तो है लेकिन तुम्हारे लिए नहीं। तुम आदमी हो या भेड़ें? ये लो बंदूकें। आओ और अपने देश को आज़ाद कराओ। तब मैं तुम्हारा स्वागत करूँगा।

ऐसे ही अपमानजनक परिस्थितियों की आग सोच के भूगर्भ में संचित होती रही जो पूँजीभूत होकर 21 अप्रैल 1913 को 'ग़दर पार्टी' और उसके 'ग़दर' अखबार के रूप में साकार हुई।

संचित अपमानजनक आक्रोश के प्रकटीकरण के इस काल के आसपास कई भारतीय विचारक और क्रांतिकारी अमरीका में इकट्ठे हो चुके थे। इनमें लाला हरदयाल प्रमुख थे। जो ऑक्सफोर्ड में पढ़ते हुए अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण वापिस भारत भेज दिए गए थे और अब भाई परमानन्द की सलाह पर अमरीका के बर्कले के पास स्टेनफर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ाने के लिए पहुँच गए थे। कुछ स्थानीय संगठन भी बन चुके थे। सभी की अंतिम मीटिंग 21 अप्रिल 1913 को हुई जिसमें भाग लेने वालों में लाला हरदयाल, सोहन सिंह भकना, करतार सिंह साराभा आदि प्रमुख थे।

तय हुआ कि संगठन का नाम 'हिंदी एसोसिएशन ऑफ़ पेसिफिक कोस्ट' होगा जिसका मुख्यालय सेनफ्रांसिस्को होगा। उर्दू पंजाबी में एक पत्र निकाला जाएगा जिसका नाम 1857 के ग़दर की स्मृति में 'ग़दर' होगा जो बाद में अन्य भारतीय भाषाओं में भी निकाला जा सकता है। हर सदस्य प्रति माह एक डॉलर चंदा देगा। पार्टी हर प्रकार के धार्मिक रीति रिवाज से परे होगी। पार्टी के किसी कर्मचारी को कोई तनख्वाह नहीं दी जाएगी। सबके लिए साझे प्रबंध के तहत भोज, कपड़ा उपलब्ध होगा। भारतीय वैदिक काल की सच्ची समानता पर आधारित पारिवारिक व्यवस्था। एक आदर्श समाज का स्वप्न।

1 नवम्बर 1913 को बर्कले की मुख्य सड़क पर बने 'शैटेक होटल' के सभागार में 'ग़दर' के पहले अंक का विमोचन हुआ।

इस मीटिंग में लाला हरदयाल ने बताया कि योरप में जिस प्रकार की परिस्थितियाँ बन रही हैं उनके अनुसार विश्व युद्ध तय है। उस समय तक पत्र और प्रचार द्वारा दुनिया में सभी जगह फैले भारतीयों को संगठित करके युद्ध में उलझे ब्रिटिश शासन को उलट देना। विश्वास था कि ऐसे में भारतवासियों का भी पूरा सहयोग मिलेगा। लेकिन हुआ क्या?

गदर पार्टी ऑफिस, सैनफ्रांसिस्को

यह एक बहुत दर्दनाक और शर्मनाक इतिहास है। जिसके बारे में न तो स्वतंत्र भारत की सरकारों ने कोई रुचि दिखाई और न ही तत्कालीन समाज ने।

27-28 सितम्बर 1914 को कनाडा में मर्मान्तक यातनाओं से गुजरता हुआ जहाज 'कमागाटामारू' जब इन बलिदानी 'गदरियों' को लेकर कोलकाता के बजबज बंदरगाह पर लगा तो कनाडा की सूचना के आधार पर उनका स्वागत करने के लिए बंगाल, पंजाब पुलिस और ब्रिटिश अधिकारियों के साथ सेना के जवान उपस्थित थे। इन बलिदानियों में से कुछ मारे गए, कुछ को जेल में दाल दिया गया और कुछ को अपने घरों में नज़रबंद करने के लिए पंजाब भेज दिया गया।

एक दीया प्रज्ज्वलित होने से पहले ही बुझा दिया गया, एक अंकुर सुबह की धूप में अँखुआने से पहले ही कुचल दिया गया। जिन भारतीयों के सहयोग के विश्वास के बल पर वे, जो अपना सब कुछ दाँव पर लगाकर अमरीका गए थे और अब सब कुछ वहीं अमरीका में छोड़कर देश की आज़ादी के लिए प्राण हथेली पर लेकर कूद पड़े थे, छले गए।

सोचिये, आज लोग अमरीका जाने के लिए मरे जा रहे हैं और वहाँ से भारत लौटने की सोचते ही नहीं बल्कि वहाँ किसी न किसी तरह नागरिकता लेना चाहते हैं, वहाँ ये दीवाने!

इनमें अधिकांश पंजाबी और पंजाबी में भी सिख थे, दुर्भाग्य देखिये, 27 फरवरी 1915 को गवर्नमेंट हाउस, लाहौर में एक मीटिंग हुई जिसमें अंग्रेजों के पिट्ठू सरदारों ने विद्रोही तत्त्वों को सख्ती से दबाने का प्रस्ताव पास किया गया। ❐

☞ ***सामाजिक सद्भाव की बलि चढ़ाकर आर्थिक समृद्धि हासिल करना संभव नहीं है।***

☞ ***आत्मविश्वासी समाज इतिहास से संवाद करता है और असुरक्षित समाज इतिहास के प्रतीकों को मिटाने की कोशिश करता है।***

कराइक्कल अम्मैयर

पूर्वा भारद्वाज

तमिल साहित्य में ही कराइक्कल अम्मैयर थीं। छठी सदी में। वे नयनार– Nayanars नाम से प्रसिद्ध 63 संत कवियों में से थीं जिनका काल छठी से नौवीं सदी तक है। उसमें तीन स्त्रियाँ थीं जिनमें कराइक्कल अम्मैयर भी थीं। नयनार शिव भक्त थे जिनको आगे चलकर संत का दर्जा दिया गया।

नयनार संत

अमेरिकी प्रोफ़ेसर Elaine Craddock ने तमिल भाषा में लिखनेवाली पहली शिवभक्त के रूप में कराइक्कल अम्मैयर का ज़िक्र किया है। तत्कालीन दक्षिण भारत में जैन और बौद्ध धर्म खूब प्रचलित था। उसमें शिवभक्ति की परंपरा में संस्कृत की जगह स्थानीय तमिल भाषा में कराइक्कल अम्मैयर का लिखना विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

https://storytrails.in/religions/the-story-of-karaikal-ammaiyar/

आम तौर पर हम ज्ञान निर्माण को समाज में भाषा की सीढ़ी में जिसे ऊपरी दर्जा मिला है, उसी भाषा में देखते हैं और स्थानीय भाषा के लेखन को मान्यता कम मिलती है। उसमें स्त्री लेखन तो और हाशिए पर धकेल दिया जाता है। ऐसे में कराइक्कल अम्मैयर का जनभाषा तमिल में अपनी बात रखना ज्ञान क्षेत्र में पुरुषों के दबदबे को चुनौती देना था।

कराइक्कल अम्मैयर का नाम उनके जन्मस्थान कराइकल (वर्तमान पांडिचेरी) से जुड़ा है। यह समुद्र तट पर बसा था और चोल साम्राज्य में था। उनका मूल नाम पुनीतावती बताया जाता है जिसका शाब्दिक अर्थ है पवित्र। वे पारंपरिक रूप से व्यापार और पैसे के लेन-देन के कारोबार करनेवाले तमिलनाडु के Nagarathar समुदाय की थीं, जो चेट्टियार उपनाम लगाते हैं। Danadattan नामक व्यापारी के घर में उनका जन्म हुआ था। बताया जाता है कि बड़ी होने पर पुनीतावती का विवाह Nagapattinam नगर के एक युवक परमदत्ता से हुआ जो आकर ससुराल में रहता था।

गृहस्थ जीवन में पतिभक्ति के अलावा कुछ भी मान्य नहीं है, देवभक्ति भी नहीं। पतिभक्ति और शिवभक्ति में टकराहट होती है और नाटकीय तरीके से पुनीतावती को विवाह के बंधन से मुक्ति मिल जाती है। यह किस्सा दिलचस्प है–

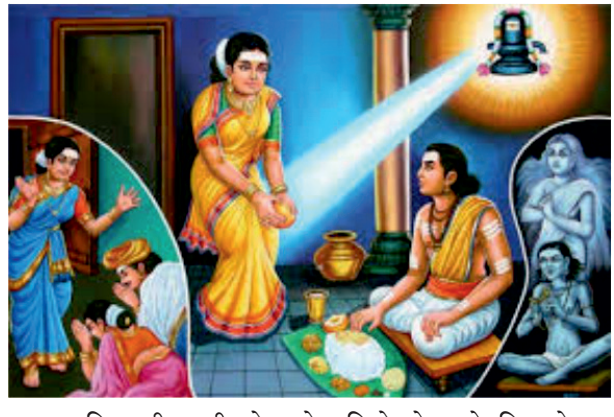

एक दिन पुनीतावती को उनके पति ने भोजन के लिए दो आम घर भिजवाए। इसी बीच एक शिवभक्त भिक्षा माँगने घर आया। पुनीतावती के घर में उस समय तक खाना नहीं बना था तो उन्होंने एक आम लाकर भिक्षुक को दे दिया। अब दोपहर के भोजन के वक्त पति ने आम माँगा। एक आम परोस दिया गया। वह स्वादिष्ट था तो दूसरे आम की फ़रमाइश हुई। पुनीतावती ने शिव के प्रति अपने प्रेम और भक्ति की बात बताई नहीं थी तो भिक्षुक को आम दे देने की बात बता नहीं पाईं। वे घबरा गईं। पति को दूसरा आम कहाँ से दें ?

अब सवाल है कि पतिव्रता गृहिणी की जो भूमिका है उसकी और भक्त दोनों की लाज कैसे बचेगी? समय पर खाना न बनने, पति

की गैरमौजूदगी में परपुरुष भिक्षुक के आने, पति के नाम रखा आम उसे दे देने का स्वाभाविक नतीजा था पति का जवाब तलब करना, नाराज़ होना। तब चमत्कार की कथा गढ़ी गई कि पहले जैसा ही एक आम पुनीतावती के हाथ में आ गया। (12वीं सदी की रचना है Periya Puranam जिसमें 63 Nayanmar के जीवन के बारे में है। इसे चोल साम्राज्य के मंत्री Sekkizhar ने लिखा था। उसमें ही यह मिथकीय कथा दी गई है। हालाँकि पुनीतावती की रचना में चमत्कार के किस्से नहीं मिलते हैं।) अब पति महोदय के मन में संदेह जगा। सवाल जवाब किया गया और तब पुनीतावती ने पूरी घटना सुना दी। पति का अविश्वास दूर करने के लिए पुनीतावती की प्रार्थना पर पलक झपकते फिर एक आम प्रकट हो गया। पत्नी अपनी मनचाही मुराद अपने बूते पा सकती है, यह असाधारण बात थी। गृहस्थी के लिए खतरे की घंटी भी। भला तब पति पर निर्भरता कैसे रहेगी!

Periya Puranam के किस्से के मुताबिक यह सब जानने के बाद पुनीतावती के पति ने बिना किसी को बताए घर छोड़ दिया और दूसरे नगर में जाकर बस गया। इतना ही नहीं, वहाँ दूसरा विवाह कर लिया। इन सबसे बेखबर पुनीतावती अपने घर में पति का इंतज़ार करती रही। बाद में जब खोज हुई तो पति ने हाथ जोड़ लिए कि पुनीतावती जैसी असाधारण पत्नी के साथ रहना मुमकिन नहीं था। देखा जाए तो वास्तविक जीवन में पत्नी को अपने से अधिक ज्ञानी या ऊँचे पायदान पर देखना, समाज को तो आज तक मंजूर नहीं है !

पुनीतावती को दांपत्य जीवन की सारहीनता समझ में आती है और वे शरीर के रूप व यौवन का परित्याग कर देती हैं। कहते हैं कि उन्होंने शिव से प्रार्थना की और एक क्षीणकाय, कुरूप पिशाचिनी का रूप माँगा जिसके लिए नाचना, भटकना ही जीवन है। शिव ने पुनीतावती की यह मनोकामना पूरी कर दी। इसके बाद पुनीतावती हिमालय की तरफ़ चल पड़ीं। सामान्य रूप से नहीं, बल्कि वे हाथों के बल चलकर गईं ताकि शिव की भूमि हिमालय को अपने पैरों से अपवित्र न करें। ज़ाहिर है रास्ता दुष्कर था और पुनीतावती ने बहुत कठिनाई से उसे पार किया होगा जिसे शायद पवित्रता और विलक्षणता का आवरण देने के लिए कहा गया कि वे हाथों के बल चलकर हिमालय गईं। इससे प्रभावित होकर शिव ने उन्हें "अम्मै" यानी माँ के रूप में पुकारा और अपने गणों में शामिल कर लिया। तब से पुनीतावती कराइक्कल अम्मैयर यानी कराइक्कल जगह वाली माँ के रूप में प्रसिद्ध हुईं।

कराइक्कल अम्मैयर की 100 पदों की लंबी रचना का नाम है– Arputha Thiru जो बहुत मार्मिक है। प्राचीन तमिल भाषा में लिखे इन पदों में शिव भक्ति के साथ शिव की वीरता का गान एक साथ मिलता है। उनमें प्राचीन संगम साहित्य में मिलनेवाले युद्ध के उन्माद, विभीषिका के स्वर की अनुगूँज मिलती है। शिव को वे पिता कहती हैं जो मृत्यु पर विजय हासिल करनेवाले वीर योद्धा के रूप में वर्णित हैं। शिव के तांडव की भंगिमा, द्रुत लय-ताल कराइक्कल अम्मैयर की भक्ति को चरम पर ले जाती है। उनकी कविता में व्यक्त यह पूरा दृश्य लोक उत्सव की छवि से घुल-मिल जाता है। एक तरह से कराइक्कल अम्मैयर ने लोक से शिव को जोड़ने का काम किया।

चोल साम्राज्य में देश-विदेश तक व्यापार फैला था। उस क्रम में कराइक्कल अम्मैयर का किस्सा भी वहाँ गया। कराइक्कल अम्मैयर के शिव के तांडव देखने की बात शिल्पकला में भी गई। प्रमाणस्वरूप कंबोडिया के मंदिर में नटराज की मूर्ति के नीचे उनको निहारते हुए क्षीणकाय कराइक्कल अम्मैयर की मूर्ति को देखा जा सकता है।

Nataraja Sculpture at the Banteay Srei temple, Cambodia

शिव के अद्भुत नृत्य की साक्षी बनने की कथा कराइक्कल अम्मैयर को उच्चता प्रदान करती है। ऐसा जान पड़ता है कि शिव के तांडव में– उनके जटा-जूट, बिखरे बाल, अनियंत्रित गति और इधर-उधर पड़ते हाथ-पाँव में कराइक्कल अम्मैयर को सकारात्मकता इसीलिए दिखी कि उसमें कोई बंधन नहीं है, केवल स्वतंत्रता का भाव है। इतना ही नहीं, श्मशान भूमि उनके लिए ब्रह्मांड का रूप ले लेती है। यह कहीं न कहीं क्रोध और डर से जुड़े तांडव और श्मशान को जीवन की सच्चाई से जोड़कर देखना है, उसे अपनाना है।

कराइक्कल अम्मैयर ने अपने लिए जो मुक्ति चाही वह थी शरीर के रूपाकार से मुक्त होकर अपनी इच्छा से अपने लिए जीना। पति को रिझाने के लिए जो शरीर की साज-सँभाल करने को कहा जाता है, उसके बेमानीपन को वे समझ जाती हैं। उनके लिए शरीर का बाहरी सौंदर्य क्षणिक है। असल है आत्मा। यदि कोई आपकी आत्मा को छूता है तो उसके लिए शरीर की खूबसूरती का कोई मतलब नहीं। रूप-यौवन छोड़ने का अर्थ यही है, शृंगार छोड़ना और अपने शरीर पर अपना अधिकार होना, उसका अपने तरीके से रख-रखाव करना। यहाँ वे स्त्री सौंदर्य के मानदंडों पर तीखी टिप्पणी करती हुई कहती हैं –

एक औरत प्रेत
जिसके हैं चिचुड़े स्तन
फूली नसें
खोखली आँखें
निकले दाँत
सूजा हुआ पेट
तांबे के रंगवाले केश
नुकीले ज़हरीले दाँत

❐

मुकरी : एक लोक-लुभावन काव्य रूप

त्रिलोक सिंह ठकुरेला

यूँ तो साहित्य की अनेक विधाएँ हैं, किन्तु रसपूर्ण एवं मनोरंजक काव्य विधाओं की बात करें तो मुकरी काव्यरूप ध्यान में आता है। हिन्दी काव्य रूपों में मुकरी का अपना महत्व है। मुकरी बहुत ही पुरातन और विरल काव्य विधा है। मुकरी को कहमुकरी के नाम से भी जाना जाता है। कह-मुकरी अर्थात् कहकर मुकर जाना।

अमीर खुसरो, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं नागार्जुन के बाद वर्तमान समय में बहादुर मिश्र ने मुकरी पर उल्लेखनीय और अद्वितीय कार्य किया है। 'मुकरियाँ (लोक-काव्य रूप)' का सम्पादन करके उन्होंने मुकरी को जीवनदान देने का काम किया है। भूमिका में वे लिखते हैं कि मुकरी हिन्दी की अकर्मक क्रिया 'मुकरना' का सामान्य भूतकालिक रूप है। इसका अर्थ होता है– कहकर मुकर जाना, अपनी बात से पीछे हट जाना, नटना या नकार देना। इसीलिए उर्दू में इसे 'कहमुकरनी' कहते हैं, जबकि भारतीय अलंकार शास्त्र में 'अपह्नुति'। व्याकरणिक दृष्टि से यह सामान्य भूतकालिक क्रिया-पद है, जबकि इसका शाब्दिक अर्थ होता है– बात से पीछे हट गयी अथवा नकार दिया। चूँकि यह दो अंतरंग सखियों के बीच का मामला है, इसलिए इसके लिए 'मुकरी' का प्रयोग होता है। यदि ये दो सखाओं के बीच की बात होती तो 'मुकरा' शब्द का प्रयोग हो रहा होता। आज की तिथि में यह स्त्री-पुरुष दोनों के द्वारा प्रयुक्त हो रहा है, किन्तु रूढ़िवश 'मुकरी' शब्द ही प्रचलन में है। जो हो, साहित्यिक दृष्टि से यह हिन्दी के विशिष्ट लोकधर्मी काव्य-रूप का बोध कराने वाला संज्ञार्थक शब्द है।

अधिकांश विद्वान मुकरी को पहेली का ही एक प्रकार मानते हैं। पहेली की तरह ही मुकरी भी श्रोता के बुद्धि विकास के साथ साथ उसका मनोरंजन करती है। पुरातन मुकरियाँ देखने पर स्वत: स्पष्ट होता है कि मुकरी दो अंतरंग सखियों के बीच का संवाद है, जिसमें पहली सखी अपनी दूसरी सखी के सामने अपनी बात कुछ इस प्रकार रखती है कि उसे अर्थ-भ्रम हो जाता है। श्रोता सखी ज्यों ही अर्थ-ग्रहण करना चाहती है, त्यों ही वक्ता सखी दूसरा अर्थ करके उसे हतप्रभ कर देती है। यद्यपि यह दो पुरुष मित्रों या स्त्री-पुरुष का संवाद भी हो सकता है। मुकरी के केन्द्र में मूलत: मनोविनोद और गौणत: बुद्धि चातुर्य का परीक्षण रहता है। पाश्चात्य विचारक जे. जे. फ्रेज़र की पुस्तक 'दि गोल्डन बफ', वॉल्यूम-IX, पेज-121 के अनुसार "पहेली (मुकरी) का उस समय उदय हुआ होगा, जबकि किन्हीं कारणों से वक्ता को किसी बात को स्पष्ट शब्दों में कहने में किसी प्रकार की अड़चन हुई होगी। मानव में बुद्धि के विकास के साथ ही मनोरंजन की भावना पैदा हुई होगी। अत: अपने ज्ञान को रहस्यात्मक रूप में कहकर उसने दूसरे की बुद्धि की परीक्षा की होगी और उसके साथ ही मनोरंजन भी हुआ होगा।

आज भी प्राय: बुद्धि-परीक्षा तथा मनोरंजन के लिए अवकाश के क्षणों में पहेलिका पूछी जाती हैं। मध्यप्रदेश, बिहार आदि प्रांतों में विवाह के अवसर पर खासकर ऐसी पहेलियाँ पूछने का रिवाज है।"

संस्कृत में दण्डी को छोड़कर कोई अन्य आचार्य इस काव्य रूप का समर्थन नहीं करता। दण्डी ने प्रहेलिका को तो परिभाषित नहीं किया, अलबत्ता इसके सोलह प्रकारों पर विचार किया। यथा– समाहिता, वंचिता, व्युत्क्रांता, प्रमुषिता, समानरूपा, परुषा, संख्याता, प्रकल्पिता, नामान्तरिता, निभृता, समानशब्दा, संमूढ़ा, परिहारिका, एकच्छन्ना, उभयछन्ना तथा संकीर्णा। दण्डी ने वंचिता नामक पहेली का जो लक्षण निर्दिष्ट किया है, वह मुकरी पर भी लागू होता है। उन्होंने काव्यादर्श में लिखा है कि जहाँ रूढ़ शब्द द्वारा विवक्षित अर्थ से भिन्न अन्यार्थ में उसका ग्रहण कर दूसरे की प्रवंचना अर्थात निषेध किया जाए, वहाँ वंचिता होती है।

मुकरी या कह-मुकरी चार पदों का सममात्रिक छंद है। मुकरी के प्रत्येक चरण में 16-16 मात्राएँ होती हैं। इस प्रकार एक आदर्श मुकरी में 64 मात्राएँ होती हैं। प्रत्येक चरण में आठवीं मात्रा पर यति होना उत्तम माना गया है। मुकरी में पहली और दूसरी तथा तीसरी और चौथी पंक्तियों में तुक रहती है, हालांकि कई मुकरीकारों ने अपवादस्वरूप उक्त विधान से इतर भी मुकरियाँ लिखी हैं, किन्तु मुकरी में अपनी बात से मुकरने या नटने का भाव अवश्य निहित होता है। पाश्चात्य विद्वान टिलियर्ड ने मुकरी को 'डिसगाइस्ड स्टेटमेंट' नामक काव्य कोटि में रखा है। मुकरी द्विपक्षीय वार्तालाप शैली में निबद्ध काव्य रूप है, जिसमें एक वक्ता और एक श्रोता की उपस्थिति अनिवार्य है।

मुकरी ऐसी काव्य संरचना है, जिसमें प्रारंभिक तीन चरणों में पहेली की तरह 'बूझो तो जानें' बाली बात छिपी रहती है, जबकि अंतिम चरण में जिज्ञासा के साथ इसके दो उत्तर निहित होते हैं। मुकरी की विशेषता है कि इसमें श्रोता के उत्तर से असहमति जताते हुए वक्ता द्वारा दूसरा उत्तर प्रस्तुत कर उसे सही ठहराया जाता है।

मराठी, गुजराती, सिन्धी तथा बंगला में क्रमशः 'उखाणा', 'उखाना', 'उखानी' तथा पहेली के नामों से प्रचलित रही और आज भी है। भारतीय विद्वान डॉ. मलिक मोहम्मद ने अमीर खुसरो पर आधारित अपनी पुस्तक 'अमीर खुसरो : भावनात्मक एकता के अग्रदूत' तथा मु. हारुन शैलेंद्र ने अपनी पुस्तक 'अमीर खुसरो का हिन्दी काव्य संसार : नये संदर्भों की तलाश' में उनकी मुकरियों पर भी विचार किया है। फ्रेज़र की तरह डॉ. मलिक भी मुकरी को पहेली का एक विशेष प्रकार मानते हैं। उन्हीं के शब्दों में– "मुकरी भी एक प्रकार की पहेली (अपह्नुति) ही है, पर उसमें उसका बूझ प्रश्नोत्तर के रूप में दिया होता है। 'ए सखि, साजन, ना, सखि' इस प्रकार का एक बार उत्तर देने के कारण अपह्नुति का नाम 'कहमुकरनी' पड़ गया है।"

श्रृंगार और रस मुकरी के प्राण तत्व हैं। सही शब्द-चयन और तुक इसे और अधिक प्रभावी बनाते हैं। यहाँ पाठकों के लिए मुकरी के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

जब माँगू तब जल भरि लावे।
मेरे मन की तपन बुझावे॥
मन का भारी तन का छोटा।
ऐ सखि साजन? ना सखि लोटा। (अमीर खुसरो)

वह आवे तो शादी होय।
उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागें वाके बोल।
ऐ सखि साजन? ना सखि ढोल। (अमीर खुसरो)

भीतर-भीतर सब रस चूसै।
हँसि-हँसि कै तन-मन-धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज।
क्यों सखि साजन? नहिं अँगरेज। (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

सीटी देकर पास बुलावै।
रुपया ले तो निकट बिठावै।
ले भागै मोहिं खेलहि खेल।
क्यों सखि साजन? नहिं सखि रेल। (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

बातन की फुलझड़ियाँ छोड़ै।
बखत पड़े तो चट मुँह मोड़ै।
छन में शेर, छन में ही गीदड़।
क्या सखि, शेर? ना सखि, लीडर। (नागार्जुन)

जैसे चाहे वह तन छूता।
उसको रोके किसका बूता।
करता रहता अपनी मर्जी।
क्या सखि, साजन? ना सखि, दर्जी। (त्रिलोक सिंह ठकुरेला)

अमीर खुसरो के बाद आधुनिक काल में मुकरी पर बहुत कम काम हुआ है। इन मुकरीकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और नागार्जुन के नाम उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में मात्र चौदह मुकरियाँ लिखीं, जो नये जमाने की मुकरियाँ के नाम से विख्यात हुईं। उन मुकरियों में अंग्रेजियत, पुलसिया जुल्म, महँगाई और बेरोजगारी जैसी तात्कालिक समस्याओं को विषय वस्तु बनाया गया है। राजनैतिक मुकरियाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अभिनव प्रयोग हैं। लगभग छह दशक के लम्बे अंतराल के बाद नागार्जुन ने केवल आठ मुकरियाँ लिखीं नागार्जुन ने भी परम्परागत विषयों से हटकर मुकरियाँ लिखी हैं।

उसके बाद समकालीन हिन्दी साहित्यकारों में त्रिलोक सिंह ठकुरेला का मुकरी संग्रह 'आनन्द मंजरी' प्रकाश में आया। यूँ मुकरी का प्रणयन संस्कृत, हिन्दी, अंगिका, बज्जिका, अवधी एवं ब्रजभाषा सहित अनेक भाषाओं में भी हुआ है, किन्तु 'आनन्द मंजरी' से पूर्व किसी रचनाकार का कोई चर्चित मुकरी संग्रह मेरे संज्ञान में नहीं है। 'आनन्द मंजरी' के प्रणयन के बाद कई समकालीन रचनाकारों के मुकरी संग्रह प्रकाश में आये हैं।

त्रिलोक सिंह ठकुरेला के मुकरी संग्रह 'आनन्द मंजरी' के प्रकाश में आने से पूर्व बहादुर मिश्र ने 'मुकरियाँ' (लोक काव्य रूप) का सम्पादन करके इस विधा के लिए विशिष्ट कार्य किया है। ठकुरेला ने 'समकालीन मुकरियाँ' नामक मुकरी संकलन का सम्पादन किया, जिसमें दस हिन्दी साहित्यकारों की मुकरियाँ संकलित हैं।

ऋता शेखर 'मधु' ने महिला रचनाकारों के एक कहमुकरी संकलन 'ऐ सखी, मैं ना झूठ बोल्या' का सम्पादन किया है, जिसमें उन्नीस महिला मुकरीकारों की रचनाएँ सम्मिलित की गयी हैं।

डॉ. सतीश चन्द्र शर्मा 'सुधांशु' द्वारा 'इक्कीसवीं सदी के मुकरीकार' नामक मुकरी संकलन का सम्पादन किया गया है, जिसमें सड़सठ रचनाकारों की मुकरियाँ संकलित की गयी हैं। ❐

वे दिन वे लोग

मुझे वह याद है

शिशिर कुमार बंदोपाध्याय

1982 की एक शाम अलीमुद्दीन में स्टेट कमेटी की मीटिंग रात 11 बजे खत्म हुई, तब मुख्यमंत्री (ज्योति बसु) हिंदुस्तान रोड पर रहते थे। मैं बालीगंज सर्कुलर रोड पर एक नॉन-बंगाली शादी वाले घर में फंस गया, दूल्हा घोड़े पर आया था, पटाखे वगैरह फूट रहे थे, मैंने अपनी मोटरसाइकिल रोकी और सिपाहियों को रेडियो कार से उतारकर बारात ले जाने लगा, इसी बीच लोकल पुलिस स्टेशन के चीफ आए और उन्हें पीटने लगे, क्योंकि मुख्यमंत्री के फंसने की बात सुनने के बाद भी वे सड़क से नहीं हट रहे थे। मुख्यमंत्री करीब बीस मिनट तक फंसे रहे।

अगले दिन मैं घर पहुँचा, सिक्योरिटी ब्रांच ऑफिसर के जरिये उन्होंने मुझे ऊपर बुलाया और अपने सामने सोफ़े पर बैठने को कहा। उन्होंने कहा– 'मैंने जॉय से सुना है कि तुम पढ़े-लिखे हो, क्या तुमने रजनीपाम दत्त का नाम सुना है?' मैंने कहा – 'वह 1937 के आस-पास ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेटरी थे, साल गलत हो सकता है सर'।

वह हंसे और बोले, "कल रात आप बहुत परेशान थे क्योंकि मैं फंस गया था। जब मैं इंग्लैंड में लॉ का स्टूडेंट था, तो भूपेश गुप्ता, इंद्रजीत गुप्ता और कुमार मंगलम की सुभाष बोस के स्वागत को लेकर मुझसे अनबन हो गई थी। मीटिंग रजनीपाम के घर पर हो रही थी। इंद्रजीत बहुत परेशान हुए और बोले, "हमें ब्रिटिश स्लेव कांग्रेस के प्रेसिडेंट का स्वागत क्यों करना चाहिए?"

श्री दत्त ने उससे कहा, "उत्तेजित मत हो, वामपंथियों को उत्तेजित होने की अनुमति नहीं है, उत्तेजना गलती का कारण है, गलती खतरे का कारण है और उस खतरे से व्यक्ति गिरता है"। तुम मेरे पायलट हो, नौजवान, मुझे उड़ाते समय कभी उत्तेजित मत होना।

"अगर मैं थोड़ी देर के लिए अटक जाऊं तो दुनिया उलट-पुलट नहीं हो जाएगी, लेकिन अगर आप अपनी नौकरी और पर्सनल लाइफ में टेंशन को कंट्रोल नहीं करते हैं, तो टेंशन से गलतियाँ होंगी, गलतियों से खतरा होगा, और खतरा से गिरावट आएगी।" आज जब मैं टीवी देखता हूँ, तो मुझे उस बहुत अच्छे आदमी की सलाह याद आती है।

अंजन बसु के फेसबुक वॉल से साभार

झाल-मुड़ी के नाम एक पत्र

मनोज कुमार झा

प्रिय झलमुड़ी,

कितने गर्व और सम्मान की बात है कि कल दोपहर बाद से तुम राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बन गई हो। यह वही देश है जहाँ अक्सर मुद्दे अपनी बारी का इंतज़ार करते-करते बूढ़े हो जाते हैं, पर तुमने तो आते ही लाइन तोड़ दी, सीधे बहस और विमर्श के केंद्र में। अमेरिका-इजरायल-ईरान जैसे जटिल भू-राजनीतिक समीकरण भी तुम्हारे सामने फीके पड़ गए; और देश के मजदूरों के बीच पसरी हताशा, वह तो जैसे खबरों की दुनिया से 'डिलीट' ही कर दी गई।

तुम्हें यह जानकर भी थोड़ा अचरज होगा और शायद थोड़ा संकोच भी कि तुम्हारी इस अचानक मिली प्रसिद्धि का श्रेय तुम्हारे स्वाद, तुम्हारी सादगी या तुम्हारी सांस्कृतिक विरासत को नहीं, बल्कि उस कैमरे को जाता है जो तुम्हें 'फ्रेम' में फिट करके दिखाता है। आजकल चीज़ें अपने होने से कम और दिखने से ज़्यादा जानी जाती हैं। और तुम तो ठहरी ठेले पर बिकने वाली, कागज़ के ठोंगे में लिपटी हुई चीज़, तुम्हारा 'ब्रांड मैनेजर' तो कोई था ही नहीं, इसलिए तुम्हें यह मौका मिलने में इतनी देर लग गई।

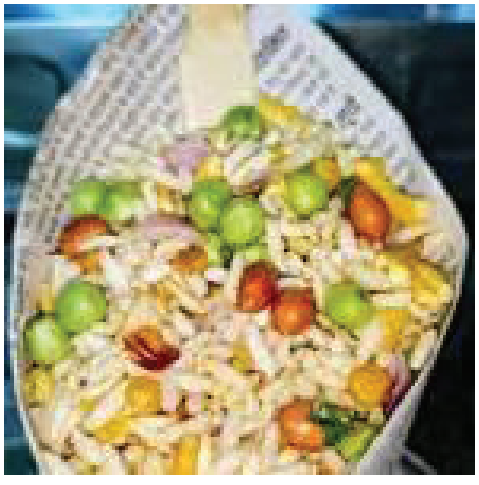

अब जब तुम्हारा ज़िक्र हो ही रहा है, तो यह बताना भी ज़रूरी है कि तुम सिर्फ एक नाश्ता नहीं हो। तुम अविभाजित बंगाल के हर हिस्से, मसलन बंगाल, बिहार, झारखंड और उड़ीसा की साझी स्मृति हो। तुम रेलवे प्लेटफॉर्म की भागदौड़ में भी हो और शाम के बाज़ार की फुर्सत में भी। तुम्हारी खुशबू में सरसों के तेल की तीखी सच्चाई है, और तुम्हारे स्वाद में हरी मिर्च की वह बेबाकी, और हाँ बारीक प्याज़ के छोटे-छोटे टुकड़े जो बिना लाग-लपेट के अपना असर छोड़ते हैं। तुम किसी एयर-कंडीशंड कैफ़े की मेन्यू कार्ड में नहीं मिलती और शायद यही तुम्हारी सबसे बड़ी ताकत है।

लेकिन, प्रिय झालमुड़ी, तुम्हारी यह ताकत ही तुम्हारी 'कमज़ोरी' भी बन जाती है, कम से कम उन लोगों के लिए जो संस्कृति को सिर्फ बड़े-बड़े नामों, संगमरमर के स्मारकों और 'विरासत' के भव्य संस्करणों में ढूंढते हैं। पिछली बार जब व्यक्ति-विशेष ने संस्कृति की खोज की थी, तो वह रवीन्द्रनाथ टैगोर तक जाकर रुक गई थी। अब यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं है पर समस्या यह है कि वहाँ से आगे बढ़ने की ज़रूरत भी कभी महसूस नहीं हुई।

तुम्हारे जैसे साधारण, रोज़मर्रा के अनुभवों में जो गहराई छिपी होती है, वह कैमरे के सामने उतनी 'ग्लैमरस' नहीं लगती। तुम्हें खाने के लिए जिस सहजता की ज़रूरत होती है, भीड़ में खड़े होकर, धूल-धक्कड़ के बीच, बिना किसी औपचारिकता के जो शायद उस सजे-सजाए, कैमरा-युक्त परिवेश में संभव ही नहीं है। वहाँ स्वाद भी 'स्क्रिप्टेड' होता है और अनुभव भी 'डायरेक्टेड'।

तुम्हें यह भी जानना चाहिए कि तुम्हारी यह अचानक मिली प्रसिद्धि स्थायी नहीं है। जैसे ही कोई नया मुद्दा, नया चेहरा, या कोई और 'फोटो-ऑप' सामने आएगा, तुम फिर से अपने ठेले पर लौट जाओगी जहाँ तुम्हें किसी राष्ट्रीय बहस की ज़रूरत नहीं, क्योंकि वहाँ तुम्हें पहचानने वाले लोग पहले से मौजूद हैं।

और शायद यही तुम्हारी सबसे बड़ी खूबी है कि तुम बिना किसी प्रचार, बिना किसी अभियान, और बिना किसी 'नैरेटिव' के भी लोगों के जीवन का हिस्सा बनी रहती हो। तुम्हें किसी भाषण की ज़रूरत नहीं, क्योंकि तुम्हारा अस्तित्व ही अपने आप में एक कथन है, सादगी का, साझेपन का, और उस जीवन-दृष्टि का जो छोटे-छोटे सुखों में भी गहरा अर्थ खोज लेती है।

तो, प्रिय झालमुड़ी, इस अचानक मिले 'राष्ट्रीय सम्मान' का आनंद लो पर उससे भ्रमित मत हो जाना। इस देसी भक्ति-विशेष की कृपा से ऐसी 'अल्पकालिक चर्चाएँ' हमने पहले भी देखी हैं, जहाँ मुद्दे नहीं, मौके चमकते हैं; और सरोकार नहीं, साउंडबाइट्स टिकते हैं।

तुम्हारी असली जगह वही है जहाँ लोग तुम्हें बिना किसी कैमरे के, बिना किसी घोषणा के, बस अपने स्वाद और अपने समय के साथ स्वीकार करते हैं। वहाँ न कोई स्क्रिप्ट होती है, न कोई 'कट' और 'रीटेक'। वहाँ तुम्हारा हर दाना उतना ही सच्चा होता है जितनी उस हाथ की मेहनत, जिसने दिनभर की थकान के बीच तुम्हें खरीदा है।

इसलिए, इस क्षणिक रोशनी से आंखें चौंधियाने मत देना। तुम्हारा मूल्य उस रोशनी में नहीं है जो अचानक तुम पर डाली गई है, बल्कि उस स्थायी उजाले में है जो तुम हर रोज़ अनगिनत ज़िंदगियों में चुपचाप जोड़ती हो।

तुम्हारा एक पुराना ग्राहक,
जो अब भी ठेले पर खड़ी ज़िंदगी को कैमरे से ज़्यादा सच्चा मानता है ❐

विज्ञान व्रत की ग़ज़लें

1.

बस अपना ही गम देखा है।
तूने कितना कम देखा है।

उसको भी गर रोते देखा
पत्थर को शबनम देखा है।

उन शाखों पर फल भी होंगे
जिनको तूने खम देखा है।

खुद को ही पहचान न पाया
जब अपना अल्बम देखा है।

हर मौसम बेमौसम जैसे
जाने क्या मौसम देखा है।

2.

एक जरा सी दुनिया घर की
लेकिन चीजें दुनिया भर की

फिर वो ही बारिश का मौसम
खस्ता हालत फिर छप्पर की

रोज सवेरे लिख लेता है
चेहरे पर दुनिया बाहर की

पापा घर मत लेकर आना
रात गये बातें दफ्तर की

बाहर धूप खड़ी है कब से
खिड़की खोलो अपने घर की

3.

जुगनू ही दीवाने निकले
अँधियारा झुठलाने निकले

ऊँचे लोग सयाने निकले
महलों में तहख़ाने निकले

वो तो सबकी ही ज़द में था
किसके ठीक निशाने निकले

आहों का अंदाज नया था
लेकिन ज़ख़्म पुराने निकले

जिनको पकड़ा हाथ समझकर
वो केवल दस्ताने निकले

4.

अपने मुँह पर ताले रखना
खुद को आज संभाले रखना

शहर बहुत हैं सूरज तनहा
अपने पास उजाले रखना

खुद से दूर न होना, अपनी
बाँह गले में डाले रखना

देख तुझे उलझाएँगे वो
तू भी प्रश्न उछाले रखना

कल ये पिंजरा ही न रहेगा
कुछ पंछी पर वाले रखना

5.

सीधी सादी बात इकहरी।
हम क्या जाने लहजा शहरी।

एक सभ्यता गूंगी बहरी
आकर मेरी बस्ती ठहरी।

जबसे बैठा बाहर प्रहरी
और डरी है घर की देहरी।

मैदानों में सिर्फ कटहरी
रातों उडकर थकी टिटहरी।

कौन दिखाता ख्वाब सुनहरी
अब तक जिंदा बूढी महरी।

जाने किसकी साजिश गहरी
मुझमें लगती रोज कचहरी।

सर पर ठहरी भरी दुपहरी
हाथ न आये छांव गिलहरी।

गर्भनाल कब कट पाती है किसी की

अमिता शर्मा

कहीं भी कोई भी माँ
अमर तो नहीं होती
एक दिन जाना होता ही है सब की माताओ को
फिर भी
जानते बूझते भी मन को ये क्या हो जाता है

पता नहीं किसी को फर्क पड़ता है या नहीं
पर बेटी के लिए बहुत बहुत पड़ जाता है
अचानक बड़ी हो जाती है वो
समझाने लग ज़ाती है स्वयं को

माँ के होते जिस घर आँगन
गली चौबारे में चहक लेती थी वो
उस आँचल की खुशबू से
महक महक लेती थी वो
अचानक सब कुछ बदल जाता है

अचानक उसे कुछ हो जाता है
हाथ से रेत जैसा कुछ फिसल जाता है

वही दर वही दीवार वही आँगन
फिर भी घर वो घर रह ही नहीं जाता
रह जाता है कुछ तो बस
कलेजे में खालीपन एक गहरी टीस

बिस्तर का कोना भर घेरी कमज़ोर कृशकाय माँ के जाते
उभर आता है ऐसा वृहद शून्य रिक्त -स्थान
जिसे फिर कुछ भी कभी भी भर नहीं पाता

माँ का जाना
जाने कैसा होता है ये जाना
कि कुछ समझ ही नहीं आता
गर्भनाल कब कट पायी है किसी की

सतीश झा की दो कविताएँ

1. मिट्टी की गन्ध

रात में
मिट्टी की गन्ध आई–

कोई दरवाज़ा नहीं खुला,
कोई आहट नहीं हुई।

वह
चुपचाप भीतर उतरती रही।

नानी की रोटी याद आई–
तवा गरम,
आँखें ठंडी।

वे कम बोलती थीं।
हाथ
हमेशा कुछ कह जाते थे।

जड़ें दिखाई नहीं देतीं,
वृक्ष खड़ा रहता है।

मिट्टी बोलती नहीं–
सब कुछ रख लेती है।

एक बच्चे ने पूछा–
आकाश कहाँ जाता है?

बाबू चुप रहे।

उत्तर
यहीं उगता है।

नदी मुड़ती है,
पत्थरों से नहीं लड़ती।

जल आगे बढ़ जाता है।
पत्थर
वहीं रह जाते हैं।

एक बूढ़ी औरत
धूप गिनती रही,
साँझ को आते देखती रही।

उसने कहा–
साँझ अच्छी लगती है।

पहली बूँद गिरी–
मिट्टी ने साँस ली।

मैंने भी।

जो गया–समय था।
जो है–जीवन है।

मिट्टी कुछ नहीं भूलती।
वह चुप रहती है–

उसकी चुप्पी में
हम रहते हैं।

2. बीज का गिरना

कभी-कभी
एक बीज
इतना चुपचाप गिरता है
कि धरती भी
पहले उसे पहचान नहीं पाती।

पर समय–

जो हर आरम्भ का
अदृश्य साक्षी है–
जानता है
किस हाथ ने उसे रखा,
किस मन ने उसे सोचा।

फिर कोई आता है
जो उस बीज को
अपनी साँसों की गर्मी देता है,
अपने दिनों की धूप,
अपने धैर्य की वर्षा।

वह जानता है
कि वृक्ष
किसी एक का नहीं होता–
न बीज का,
न देखभाल करने वाले का।
वह उन सबका होता है
जिन्होंने
उसे सम्भव बनाया।

और जब वृक्ष
अपनी छाया फैलाता है,
लोग अक्सर
उसी को याद रखते हैं
जो उसके नीचे
सबसे अधिक समय तक रहा।

पर हवा–
जो स्मृति की तरह
हर दिशा में बहती है–
कभी-कभी
बीज की ओर लौट आती है,
और कहती है:
"मैंने तुम्हें गिरते देखा था।
तुम्हारे गिरने में ही
वृक्ष का उठना छिपा था।"

इस तरह
आरम्भ और निरन्तरता
एक दूसरे को
धीरे-धीरे समझते हैं–
जैसे दो स्वभाव
एक ही सत्य के
अलग-अलग रूप हों।

और वृक्ष–
जो अब किसी नाम का नहीं–
बस खड़ा रहता है
अपनी ऊँचाई में,
अपनी नीरवता में,
अपने ऋणों की
अदृश्य जड़ों के साथ।

❐

टार्च बेचने वाले

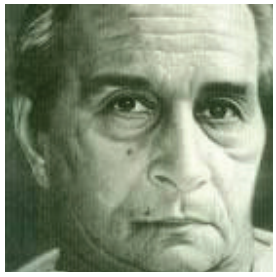

हरिशंकर परसाई
(1924 -1995)

वह पहले चौराहों पर बिजली के टार्च बेचा करता था। बीच में कुछ दिन वह नहीं दिखा। कल फिर दिखा। मगर इस बार उसने दाढ़ी बढ़ा ली थी और लंबा कुर्ता पहन रखा था।

मैंने पूछा, कहाँ रहे? और यह दाढ़ी क्यों बढ़ा रखी है?

उसने जवाब दिया, बाहर गया था।

दाढ़ीवाले सवाल का उसने जवाब यह दिया कि दाढ़ी पर हाथ फेरने लगा।

मैंने कहा, आज तुम टार्च नहीं बेच रहे हो?

उसने कहा, वह काम बंद कर दिया। अब तो आत्मा के भीतर टार्च जल उठा है। ये 'सूरजछाप' टार्च अब व्यर्थ मालूम होते हैं।

मैंने कहा, तुम शायद संन्यास ले रहे हो। जिसकी आत्मा में प्रकाश फैल जाता है, वह इसी तरह हरामख़ोरी पर उतर आता है। किससे दीक्षा ले आए?

मेरी बात से उसे पीड़ा हुई। उसने कहा, ऐसे कठोर वचन मत बोलिए। आत्मा सबकी एक है। मेरी आत्मा को चोट पहुँचाकर आप अपनी ही आत्मा को घायल कर रहे हैं।

मैंने कहा, यह सब तो ठीक है। मगर यह बताओ कि तुम एकाएक ऐसे कैसे हो गए? क्या बीवी ने तुम्हें त्याग दिया? क्या उधार मिलना बंद हो गया? क्या साहूकारों ने ज़्यादा तंग करना शुरू कर दिया? क्या चोरी के मामले में फँस गए हो? आख़िर बाहर का टार्च भीतर आत्मा में कैसे घुस गया?

उसने कहा, आपके सब अंदाज़ ग़लत हैं। ऐसा कुछ नहीं हुआ। एक घटना हो गई है, जिसने जीवन बदल दिया। उसे मैं गुप्त रखना चाहता हूँ। पर क्योंकि मैं आज ही यहाँ से दूर जा रहा हूँ, इसलिए आपको सारा क़िस्सा सुना देता हूँ।

उसने बयान शुरू किया–

पाँच साल पहले की बात है। मैं अपने एक दोस्त के साथ हताश एक जगह बैठा था। हमारे सामने आसमान को छूता हुआ एक सवाल खड़ा था। वह सवाल था–'पैसा कैसे पैदा करें?' हम दोनों ने उस सवाल की एक-एक टाँग पकड़ी और उसे हटाने की कोशिश करने लगे। हमें पसीना आ गया, पर सवाल हिला भी नहीं। दोस्त ने कहा–यार, इस सवाल के पाँव ज़मीन में गहरे गड़े है। यह उखड़ेगा नहीं। इसे टाल जाएँ।

हमने दूसरी तरफ़ मुँह कर लिया। पर वह सवाल फिर हमारे सामने आकर खड़ा हो गया। तब मैंने कहा–यार, यह सवाल टलेगा नहीं। चलो, इसे हल ही कर दें। पैसा पैदा करने के लिए कुछ काम-धंधा करें। हम इसी वक़्त अलग-अलग दिशाओं में अपनी-अपनी क़िस्मत आज़माने निकल पड़े। पाँच साल बाद ठीक इसी तारीख़ को इसी वक़्त हम यहाँ मिलें।

दोस्त ने कहा–यार, साथ ही क्यों न चलें?

मैंने कहा–नहीं। क़िस्मत आज़मानेवालों की जितनी पुरानी कथाएँ मैंने पढ़ी हैं, सबमें वे अलग-अलग दिशा में जाते हैं। साथ जाने में क़िस्मतों के टकराकर टूटने का डर रहता है।

तो साहब, हम अलग-अलग चल पड़े। मैने टार्च बेचने का धंधा शुरू कर दिया। चौराहे पर या मैदान में लोगों को इकट्ठा कर लेता और बहुत नाटकीय ढंग से कहता–"आजकल सब जगह अँधेरा छाया रहता है। रातें बेहद काली होती हैं। अपना ही हाथ नहीं सूझता। आदमी को रास्ता नहीं दिखता। वह भटक जाता है। उसके पाँव काँटों से बिंध जाते है, वह गिरता है और उसके घुटने लहूलुहान हो जाते हैं। उसके आसपास भयानक अँधेरा है। शेर और चीते चारों तरफ़ घूम रहे हैं, साँप ज़मीन पर रेंग रहे हैं। अँधेरा सबको निगल रहा है। अँधेरा घर में भी है। आदमी रात को पेशाब करने उठता है और साँप पर उसका पाँव पड़ जाता है। साँप उसे डँस लेता है और वह मर जाता है।

आपने तो देखा ही है साहब, कि लोग मेरी बातें सुनकर कैसे डर जाते थे। भर-दुपहर में वे अँधेरे के डर से काँपने लगते थे। आदमी को डराना कितना आसान है!

लोग डर जाते, तब मैं कहता–"भाइयों, यह सही है कि अँधेरा है, मगर प्रकाश भी है। वही प्रकाश मैं आपको देने आया हूँ। हमारी 'सूरज छाप' टार्च में वह प्रकाश है, जो अंधकार को दूर भगा देता है। इसी वक़्त 'सूरज छाप' टार्च ख़रीदो और अँधेरे को दूर करो। जिन भाइयों को चाहिए, हाथ ऊँचा करें।

साहब, मेरे टार्च बिक जाते और मैं मज़े में ज़िंदगी गुज़ारने लगा।

वायदे के मुताबिक़ ठीक पाँच साल बाद मैं उस जगह पहुँचा, जहाँ मुझे दोस्त से मिलना था। वहाँ दिन-भर मैंने उसकी राह देखी वह नहीं आया। क्या हुआ? क्या वह भूल गया? या अब वह इस असार संसार में ही नहीं है?

मैं उसे ढूँढ़ने निकल पड़ा।

एक शाम जब मैं एक शहर की सड़क पर चला जा रहा था, मैंने देखा कि पास के मैदान में ख़ूब रोशनी है और एक तरफ़ मंच सजा है। लाउडस्पीकर लगे हैं। मैदान में हज़ारों नर-नारी श्रद्धा से झुके बैठे हैं। मंच पर सुंदर रेशमी वस्त्रों से सजे एक भव्य पुरुष बैठे हैं। ये ख़ूब पुष्ट है, सँवारी हुई लंबी दाढ़ी है और पीठ पर लहराते लंबे केश है।

मैं भीड़ के एक कोने में जाकर बैठ गया।

भव्य पुरुष फ़िल्मों के संत लग रहे थे। उन्होंने गुरु-गंभीर वाणी में प्रवचन शुरू किया। वे इस तरह बोल रहे थे जैसे आकाश के किसी कोने से कोई रहस्यमय संदेश उनके कान में सुनाई पड़ रहा है जिसे

वे भाषण दे रहे हैं।

वे कह रहे थे–मैं आज मनुष्य को एक घने अंधकार में देख रहा हूँ। उसके भीतर कुछ बुझ गया है। यह युग ही अंधकारमय है। यह सर्वग्राही अंधकार संपूर्ण विश्व को अपने उदर में छिपाए है। आज मनुष्य इस अंधकार से घबरा उठा है। यह पथभ्रष्ट हो गया है। आज आत्मा में भी अंधकार है। अंतर की आँखें ज्योतिहीन हो गई हैं। वे उसे भेद नहीं पातीं। मानव-आत्मा अंधकार में घुटती है। मैं देख रहा हूँ, मनुष्य की आत्मा भय और पीड़ा से त्रस्त है।

इसी तरह वे बोलते गए और लोग स्तब्ध सुनते गए।

मुझे हँसी छूट रही थी। एक-दो बार दबाते-दबाते भी हँसी फूट गई और पास के श्रोताओं ने मुझे डाँटा।

भव्य पुरुष प्रवचन के अंत पर पहुँचते हुए कहने लगे–"भाइयों और बहनों, डरो मत। जहाँ अंधकार है, वहीं प्रकाश है। अंधकार में प्रकाश की किरण है, जैसे प्रकाश में अंधकार को किंचित कालिमा है। प्रकाश भी है। प्रकाश बाहर नहीं है, उसे अंतर में खोजो। अंतर में बुझी उस ज्योति को जगाओ। मैं तुम सबको उस ज्योति को जगाने के लिए आह्वान करता हूँ। मैं तुम्हारे भीतर वही शाश्वत ज्योति को जगाना चाहता हूँ। हमारे 'साधना मंदिर' में आकर उस ज्योति को अपने भीतर जगाओ।

साहब, अब तो मैं खिलखिलाकर हँस पड़ा। पास के लोगों ने मुझे धक्का देकर भगा दिया। मैं मंच के पास जाकर खड़ा हो गया।

भव्य पुरुष मंच से उतरकर कार पर चढ़ रहे थे। मैंने उन्हें ध्यान से पास से देखा। उनकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, इसलिए मैं थोड़ा झिझका। पर मेरी तो दाढ़ी नहीं थी। मैं तो उसी मौलिक रूप में था। उन्होंने मुझे पहचान लिया। बोले–"अरे तुम!" मैं पहचानकर बोलने ही वाला था कि उन्होंने मुझे हाथ पकड़कर कार में बिठा लिया। मैं फिर कुछ बोलने लगा तो उन्होंने कहा–"बँगले तक कोई बातचीत नहीं होगी। वहीं ज्ञान-चर्चा होगी।

मुझे याद आ गया कि वहाँ ड्राइवर है।

बँगले पर पहुँचकर मैंने उसका ठाठ देखा। उस वैभव को देखकर मैं थोड़ा झिझका, पर तुरंत ही मैंने अपने उस दोस्त से खुलकर बातें शुरू कर दीं।

मैंने कहा–"यार, तू तो बिलकुल बदल गया।

उसने गंभीरता से कहा–परिवर्तन जीवन का अनंत क्रम है।"

मैंने कहा–"साले, फ़िलासफ़ी मत बघार यह बता कि तूने इतनी दौलत कैसे कमा ली पाँच सालों में?

उसने पूछा–तुम इन सालों में क्या करते रहे?

मैंने कहा–मैं तो घूम-घूमकर टार्च बेचता रहा। सच बता, क्या तू भी टार्च का व्यापारी है?"

उसने कहा–तुझे क्या ऐसा ही लगता है? क्यों लगता है? मैंने उसे बताया कि जो बातें मैं कहता हूँ; वही तू कह रहा था मैं सीधे ढंग से कहता हूँ, तू उन्हीं बातों को रहस्यमय ढंग से कहता है। अँधेरे का डर दिखाकर लोगों को टार्च बेचता हूँ। तू भी अभी लोगों को अँधेरे का डर दिखा रहा था, तू भी ज़रूर टार्च बेचता है।

उसने कहा–तुम मुझे नहीं जानते, मैं टार्च क्यों बेचूँगा। मैं साधु, दार्शनिक और संत कहलाता हूँ।

मैंने कहा–तुम कुछ भी कहलाओ, बेचते तुम टार्च हो। तुम्हारे और मेरे प्रवचन एक जैसे हैं। चाहे कोई दार्शनिक बने, संत बने या साधु बने, अगर वह लोगों को अँधेरे का डर दिखाता है, तो ज़रूर अपनी कंपनी का टार्च बेचना चाहता है। तुम जैसे लोगों के लिए हमेशा ही अंधकार छाया रहता है। बताओ, तुम्हारे जैसे किसी आदमी ने हज़ारों में कभी भी यह कहा है कि आज दुनिया में प्रकाश फैला है? कभी नहीं कहा। क्यों? इसलिए कि उन्हें अपनी कंपनी का टार्च बेचना है। मैं ख़ुद भर-दुपहर में लोगों से कहता हूँ कि अंधकार छाया है। बता किस कंपनी का टार्च बेचता है?

मेरी बातों ने उसे ठिकाने पर ला दिया था। उसने सहज ढंग से कहा–तेरी बात ठीक ही है। मेरी कंपनी नई नहीं है, सनातन है।

मैंने पूछा–"कहाँ है तेरी दुकान? नमूने के लिए एकाध टार्च तो दिखा। 'सूरज छाप' टार्च से बहुत ज़्यादा बिक्री है उसकी।

उसने कहा–"उस टार्च की कोई दुकान बाज़ार में नहीं है। वह बहुत सूक्ष्म है। मगर क़ीमत उसकी बहुत मिल जाती है। तू एक-दो दिन रह, तो मैं तुझे सब समझा देता हूँ।

तो साहब मैं दो दिन उसके पास रहा। तीसरे दिन 'सूरज छाप' टोर्च की पेटी को नदी में फेंककर नया काम शुरू कर दिया।

वह अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरने लगा। बोला–बस एक महीने की देर और है।

मैंने पूछा तो अब कौन-सा धंधा करोगे?

उसने कहा–धंधा वही करूँगा, यानी टार्च बेचूँगा। बस कंपनी बदल रहा हूँ। ❐

एक ग़ज़ल

'आबिद आलमी' की ग़ज़ल

पूछते फिरते हैं घर वाले, ये घर किसका है
कौन सी बस्ती है, यारो, ये नगर किसका है

घर के आंगन में खिली धूप को भी छू न सकें
काश, समझाये कोई मुझ को, ये डर किसका है

कश्तियां डाल के तुम चाहे तसल्ली कर लो
वरना ये बात मसल्लम है, भँवर किसका है

मंतज़िर जिस के हैं हर हाथ में तीखे पत्थर
गर नहीं मेरा, तो बतलाओ वो सर किसका है

मरहला पहले तो इस वक्त का हम तय कर लें
बाद में सोचेंगे, आगे का सफ़र किसका है

मुझ से क्या मेरा पता पूछ रहे हो, यारों
वो मकां जिस में है दीवार न दर, किसका है

आज के दौर में 'आबिद' के अलावा कोई
वक्त की राह में अड़ जाए जिग़र किसका है

मुसल्लम : सर्वज्ञात; मुंतज़िर : प्रतीक्षारत

एक सदैव प्रासंगिक कहानी

दो बाँके

भगवतीचरण वर्मा

(महान साहित्यकार अविस्मरणीय पात्र देते हैं जो पाठक को काल की सीमाओं से परे जाकर भी मानव मन और प्रवृत्तियों को समझने की सलाहियत प्रदान करते हैं। हमारे आज के विडंबनायुक्त समाज और उसके चरित्रों को समझने में यह कहानी आज भी एक अद्‌भुत क्षमता रखती है।तो मिलें लखनऊ के ऐसे ही दो सजीले बाँकों से जो किसी भिन्न वेश और छवि में आज भी दुनिया हर भाग में मिल जाएँगे। –सं.)

शायद ही कोई ऐसा अभागा हो, जिसने लखनऊ का नाम न सुना हो, और युक्त प्रांत में ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तान में, और मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि सारी दुनिया में लखनऊ की शोहरत है। लखनऊ के सफ़ेदा आम, लखनऊ के ख़रबूज़े, लखनऊ की रेवड़ियाँ, ये सब ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें लखनऊ से लौटते समय लोग सौगात की तौर पर साथ ले जाया करते हैं, लेकिन कुछ ऐसी भी चीज़ें हैं जो साथ नहीं ले जाई जा सकतीं, और उनमें लखनऊ की ज़िंदा-दिली और लखनऊ की नफ़ासत विशेष रूप से आती हैं।

ये तो वे चीज़ें हैं, जिन्हें देसी और परदेसी सभी जान सकते हैं, पर कुछ ऐसी भी चीज़ें हैं जिन्हें कुछ लखनऊवाले तक नहीं जानते, और अगर परदेसियों को इनका पता लग जाए, तो समझिए कि उन परदेसियों के भाग खुल गए। इन्हीं विशेष चीज़ों में आते हैं लखनऊ के 'बाँके'।

'बाँके' शब्द हिन्दी का है या उर्दू का, यह विवादग्रस्त विषय हो सकता है, और हिन्दीवालों का कहना है–इन हिन्दीवालों में मैं भी हूँ–कि यह शब्द संस्कृत के 'बंकिम' शब्द से निकला है; पर यह मानना पड़ेगा कि जहाँ 'बंकिम' शब्द में कुछ गंभीरता है, कभी-कभी कुछ तीखापन झलकने लगता है, वहाँ 'बाँके' शब्द में एक अजीब बाँकापन है। अगर जवान बाँका-तिरछा न हुआ, तो आप निश्चय समझ लें कि उसकी जवानी की कोई सार्थकता नहीं। अगर चितवन बाँकी नहीं, तो आँख का फोड़ लेना अच्छा है। बाँकी अदा और बाँकी झाँकी के बिना ज़िन्दगी सूनी हो जाए। मेरे ख़याल से अगर दुनिया से बाँका शब्द उठ जाए, तो कुछ दिल-चले लोग ख़ुदकुशी करने पर आमादा हो जाएँगे। और इसीलिए मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि लखनऊ बाँका शहर है, और इस बाँके शहर में कुछ बाँके रहते हैं, जिनमें गज़ब का बाँकपन है। यहाँ पर आप लोग शायद झल्ला कर यह पूछेंगे–म्याँ, यह 'बाँके' क्या बला है? कहते क्यों नहीं? और मैं उत्तर दूँगा कि आप में सब्र नहीं, अगर उन बाँकों की एक बाँकी भूमिका नहीं हुई, तो फिर कहानी किस प्रकार बाँकी हो सकती है।

हाँ, तो लखनऊ में रईस हैं, रंडियाँ हैं और इन दोनों के साथ शोहदे भी हैं। बकौल लखनऊवालों के, ये शोहदे ऐसे-वैसे नहीं हैं। ये लखनऊ की नाक हैं। लखनऊ की सारी बहादुरी के ये ठेकेदार हैं और ये जान ले लेने तथा दे देने पर आमादा रहते हैं। अगर लखनऊ से ये शोहदे हटा दिए जाएँ, तो लोगों का यह कहना, 'अजी, लखनऊ तो जनानों का शहर है।' सोलह आने सच्चा उतर जाए।

जनाब, इन्हीं शोहदों के सरगनों को लखनऊवाले 'बाँके' कहते हैं। शाम के वक़्त तहमत पहने हुए और कसरती बदन पर जालीदार बनियान पहनकर उसके ऊपर बूटेदार चिकन का कुरता डाटे हुए जब ये निकलते हैं, तब लोग-बाग बड़ी हसरत की निगाहों से उन्हें देखते हैं। उस वक़्त इनके पट्टेदार बालों में करीब आध पाव चमेली का तेल पड़ा रहता है, कान में इत्र की अनगिनती फुरहरियाँ खुँसी रहती हैं और एक बेले का गजरा गले में तथा एक हाथ की कलाई पर रहता है। फिर ये अकेले भी नहीं निकलते, इनके साथ शागिर्द शोहदों का जुलूस रहता है, एक-से-एक बढ़कर बोलियाँ बोलते हुए, फब्तियाँ कसते हुए और शोख़ियाँ हाँकते हुए। उन्हें देखने के लिए एक हुजूम उमड़ पड़ता है।

तो उस दिन मुझे अमीनाबाद से नख्खास जाना था। पास में पैसे कम थे, इसलिए जब एक नवाब साहब ने आवाज़ दी, 'नख्खास' तो मैं उचक कर उनके इक्के पर बैठ गया। यहाँ यह बतला देना ठीक होगा कि लखनऊ के इक्केवालों में तीन-चौथाई शाही ख़ानदान के हैं, और यही उनकी बद-क़िस्मती है तथा सरकार की ज़ियादती है कि उनका वसीका बंद या कम कर दिया गया और उन्हें इक्का हाँकना पड़ रहा है।

इक्का नख्खास की तरफ चला और मैंने मियाँ इक्केवाले से कहा–कहिए नवाब साहब! खाने-पीने भर को तो पैदा कर लेते हैं?

इस सवाल का पूछा जाना था कि नवाब साहब के उद्‌गारों के बाँध का टूट पड़ना था। बड़े करुण स्वर में बोले–क्या बतलाऊँ हुज़ूर, अपनी क्या हालत है, कह नहीं सकता! ख़ुदा जो कुछ दिखलाएगा, देखूँगा! एक दिन था जब हम लोगों के बुज़ुर्ग हुकूमत करते थे, ऐशो-ओ-आराम की ज़िंदगी बसर करते थे, लेकिन आज भूखों मरने की नौबत आ गई है। ओह हुज़ूर, अब पेशे में कुछ रह नहीं रह गया। पहले तो ताँगे चले, जी को समझाया-बुझाया, 'म्याँ' अपनी-अपनी क़िस्मत? मैं भी ताँगा ले लूँगा, यह तो वक़्त की बात है, मुझे भी फ़ायदा होगा, लेकिन क्या बतलाऊँ हुज़ूर, हालत दिनों-दिन बिगड़ती ही गई। अब देखिए, मोटरों-पर-मोटरें चल रही हैं। भला बतलाइए हुज़ूर, जो सुख इक्के की सवारी में है, वह भला ताँगे या मोटर में मिलने का? ताँगे में पलथी मार कर बैठ नहीं सकते। जाते उत्तर की तरफ़ हैं, मुँह दक्खिन की तरफ़ रहता है। अजी, साहब, हिन्दुओं में मुरदा उलटे सिर ले जाया जाता है, लेकिन ताँगे में लोग ज़िंदा ही उलटे सिर चलते हैं और ज़रा ग़ौर कीजिए, ये मोटरें शैतान की तरह चलती हैं। जहाँ जाती हैं वहाँ बला की धूल उड़ाती हैं कि इंसान अंधा हो जाए। मैं तो कहता हूँ कि बिना जानवर के आप चलने वाली सवारी से दूर ही रहना चाहिए, उसमें शैतान का फेर है।

इक्केवाले नवाब और न जाने क्या-क्या कहते, अगर वो 'या अली' के नारे से चौंक न उठते।

सामने क्या देखते हैं कि एक आलम उमड़ा पड़ रहा है। इक्का रकाबगंज के पुल के पास पहुँच कर रुक गया।

एक अजीब समाँ था। रकाबगंज के पुल के दोनों तरफ़ क़रीब पंद्रह हज़ार की भीड़ थी, लेकिन पुल पर एक आदमी नहीं। पुल के एक किनारे क़रीब पचीस शोहदे लाठी लिए हुए खड़े थे और दूसरे ओर भी उतने ही, लेकिन एक ख़ास बात यह थी कि सड़क के बीचो-बीच पुल के एक सिरे पर एक चारपाई रक्खी थी और दूसरी ओर दूसरी। बीच-बीच में रुक-रुक कर दोनों ओर से 'या अली' के नारे लगते थे।

मैंने इक्केवाले से पूछा–क्यों म्याँ, क्या मामला है?

इक्केवाले ने एक तमाशाबीन से पूछकर कहा–हुज़ूर, आज दो बाँकों में लड़ाई होनेवाली है, उसी लड़ाई को देखने के लिए यह भीड़ इकट्ठी है।

मैंने फिर पूछा–यह क्यों?

इक्केवाले ने जवाब दिया–हुज़ूर, पुल के इस पार के शोहदों का सरगना एक बाँका है और उस पार के शोहदों का सरगना दूसरा बाँका। कल इस पार के एक शोहदे से पुल के उस पार के दूसरे शोहदे का कुछ झगड़ा हो गया और उस झगड़े में कुछ मार-पीट हो गई। लेकिन बाद में दोनों बाँकों में इस फ़साद पर कहा-सुनी हुई और उस कहा-सुनी में ही मैदान बंद दिया गया।

चुक होकर मैं उधर देखने लगा। एकाएक मैंने पूछा, "लेकिन ये चारपाइयाँ क्यों आई हैं?"

अरे हुज़ूर! इन बाँकों की लड़ाई कोई ऐसी-वैसी थोड़ी ही होगी, इसमें ख़ून बहेगा और लड़ाई तब तक ख़त्म न होगी, जब तक एक बाँका ख़त्म न हो जाए। आज तो एक-आध लाश गिरेगी। ये चारपाइयाँ उन बाँकों की लाशें उठाने के लिए आई हैं। दोनों बाँके अपने बीवी-बच्चों से रुख़सत लेकर और कर्बला के लिए तैयार होकर आवेंगे।

इसी समय दोनों ओर से 'या अली' की एक बहुत बुलंद आवाज़ उठी। मैंने देखा कि पुल के दोनों तरफ़ हाथ में लाठी लिए हुए दोनों बाँके आ गए। तमाशाबीनों में एक सकता-सा छा गया, सब लोग चुप हो गए।

पुल के इस पारवाले बाँके ने सड़क के दूसरे पार वाले बाँके से कहा–उस्ताद! और दूसरे पार वाले बाँके ने कड़क कर उत्तर दिया–उस्ताद!

पुल के इस पार वाले बाँके ने कहा–उस्ताद, आज ख़ून हो जाएगा, ख़ून!

पुल के उस पार वाले बाँके ने कहा–उस्ताद, आज लाशें गिर जाएँगी, लाशें!

पुल के इस पार वाले बाँके ने कहा–उस्ताद, आज क़हर हो जाएगा, क़हर!

पुल के उस पार वाले बाँके ने कहा–उस्ताद, आज क़यामत बरपा हो जाएगी, क़यामत!

चारों ओर एक गहरा सन्नाटा फैला था। लोगों के दिल धड़क रहे थे, भीड़ बढ़ती ही जा रही थी।

पुल के इस पार वाले बाँके ने लाठी का एक हाथ घुमाकर एक क़दम बढ़ते हुए कहा–तो फिर उस्ताद होशियार!

पुल के उस पार वाले बाँके के शागिर्दों ने गगनभेदी स्वर में नारा लगाया–या अली!

पुल के उस पारवाले बाँके ने भी लाठी का एक हाथ घुमाकर एक क़दम बढ़ाते हुए कहा, तो फिर उस्ताद सँभलना!

पुल के उस पार वाले बाँके के शागिर्दों ने गगनभेदी स्वर में नारा लगाया–या अली!

दोनों तरफ़ के दोनों बाँके, क़दम-ब-क़दम लाठी के हाथ दिखलाते हुए तथा एक-दूसरे को ललकारते आगे बढ़ रहे थे, दोनों तरफ़ के बाँकों के शागिर्द हर क़दम पर 'या अली!' के नारे लगा रहे थे, और दोनों तरफ़ के तमाशाबीनों के हृदय उत्सुकता, कौतूहल तथा इन बाँकों की वीरता के प्रदर्शन के कारण धड़क रहे थे।

पुल के बीचों-बीच, एक-दूसरे से दो क़दम की दूरी पर दोनों बाँके रुके। दोनों ने एक-दूसरे को थोड़ी देर ग़ौर से देखा। फिर दोनों बाँकों की लाठियाँ उठीं, और दाहिने हाथ से बाएँ हाथ में चली गईं।

इस पार वाले बाँके ने कहा–फिर उस्ताद!

उस पार वाले बाँके ने कहा–फिर उस्ताद!

इस पार वाले बाँके ने अपना हाथ बढ़ाया, और उस पार वाले बाँके ने अपना हाथ बढ़ाया। और दोनों के पंजे गुँथ गए।

दोनों बाँकों के शागिर्दों ने नारा लगाया–या अली! पंजा टस-से-मस नहीं हो रहा है। दस मिनट तमाशबीन सकते की हालत में खड़े रहे, इतने में इस पार वाले बाँके ने कहा "उस्ताद, ग़ज़ब के कस है!"

उस पार वाले बाँके ने कहा–उस्ताद, बला का ज़ोर है!

इस पार वाले बाँके ने कहा–उस्ताद, अभी तक मैंने समझा था कि मेरे जोड़ का लखनऊ में कोई दूसरा नहीं है।

उस पार वाले बाँके ने कहा–उस्ताद, आज मुझे अपनी जोड़ का आदमी मिला!

इस पार वाले बाँके ने कहा–उस्ताद, तबीअत नहीं होती कि तुम्हारे जैसे बहादुर आदमी का ख़ून करूँ!

उस पार वाले बाँके ने कहा–उस्ताद, तबीअत नहीं होती कि तुम्हारे जैसे शेरदिल आदमी की लाश गिराऊँ!

थोड़ी देर के लिए दोनों मौन हो गए, पंजा गुँथा हुआ, टस-से-मस नहीं हो रहा है।

इस पार वाले बाँके ने कहा–उस्ताद, झगड़ा किस बात का है?

उस पार वाले बाँके ने कहा–उस्ताद, यही तो मैं भी समझ नहीं पा रहा हूँ!

इस पार वाले बाँके ने कहा–उस्ताद, पुल के इस तरफ़ वाले हिस्से का मालिक मैं!

उस पार वाले बाँके ने कहा–उस्ताद, पुल के इस तरफ़ वाले हिस्से का मालिक मैं!

और दोनों ने एक साथ कहा–पुल की दूसरी तरफ़ से न हमें कोई मतलब है और न हमारे शागिर्दों को!

दोनों के हाथ ढीले पड़े, दोनों ने एक-दूसरे को सलाम किया और फिर दोनों घूम पड़े। छाती फुलाए हुए दोनों बाँके अपने शागिर्दों से आ मिले। बिजली की तरह यह ख़बर फैल गई कि दोनों बराबर की जोड़ छूटे और उनमें सुलह हो गई।

इक्केवाले को पैसे देकर मैं वहाँ से पैदल ही लौट पड़ा क्योंकि देर हो जाने के कारण नख्खास जाना बेकार था।

इस पार वाला बाँका अपने शागिर्दों से घिरा चल रहा था। शागिर्द कह रहे थे–उस्ताद, इस वक़्त बड़ी समझ से काम लिया, वरना आज लाशें गिर जातीं, उस्ताद हम सब-के-सब अपनी-अपनी जान दे देते, लेकिन उस्ताद, ग़ज़ब के कस हैं।

इतने में बाँके से किसी ने कहा–मुला स्वाँग ख़ूब करयो!

बाँके ने देखा कि एक लंबा और तगड़ा देहाती, जिसके हाथ में एक भारी-सा लट्ठ है, सामने खड़ा मुसकुरा रहा है।

उस वक़्त बाँके ख़ून का घूँट पीकर रह गए। उन्होंने सोचा–एक बाँका दूसरे बाँके से ही लड़ सकता है, देहातियों से उलझना उसे शोभा नहीं देता।

शागिर्द भी ख़ून का घूँट पीकर रह गए, उन्होंने सोचा, भला उस्ताद की मौजूदगी में उन्हें हाथ उठाने का कोई हक़ भी है?

❐

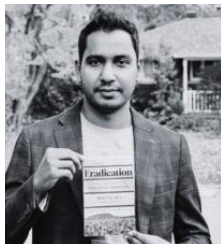

मय्यू अली की कविताएँ

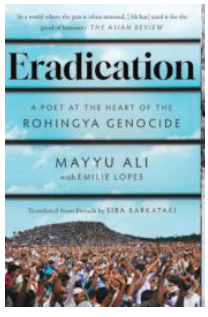

(रोहिंग्या जनसंहार की भयावह पृष्ठभूमि से बच निकले 35 वर्षीय मय्यू अली इस समय कनाडा में शरण प्राप्त हैं। उनकी किताब 'इरैडिकेशन' केवल एक संस्मरण नहीं, बल्कि मिटा दिए जाने के ख़िलाफ़ कविता का प्रतिरोध है. यह पुस्तक बताती है कि नफ़रत कैसे जन्म लेती है और स्मृति, भाषा व साहस किस तरह अस्तित्व को बचाने का आख़िरी सहारा बनते हैं।

यहाँ मय्यू अली की कुछ कविताओं का मनीष आजाद द्वारा किया गया अनुवाद प्रस्तुत है। –सं.)

1. मेरे स्कूल का पहला दिन

उस सुबह,
मैं बहुत उत्साहित था।
बहुत जल्दी पहुँच गया था स्कूल,
ताकि क्लासरूम में मिल सके पहली सीट।

मेरा दिल खुशी से भर गया,
जब मैंने क्लासरूम में पहली सीट पाई।

"यह 'कलार' के लिए नहीं है,"
सयामा ने मुझसे कहा।
उसने मुझे वापस खदेड़ दिया
और मैं अंदर से टूट गया।

उस दिन, उसने मुझे कुछ सिखाया (भेदभाव)
लेकिन पाठ्यक्रम से नहीं, बल्कि अपने बीमार दिल से।

मैं, जो स्कूल मुस्कुराते हुए गया था,
लेकिन घर लौटा
रोते हुए।

'कलार' शब्द का प्रयोग है, वह मुसलमानों के लिए गाली की तरह इस्तेमाल किया जाता है, जैसे भारत में "कटुआ" शब्द।

2. धरती पर कोई जगह नहीं

एक बार जन्म लेने के बाद,
मैं जीता रहा अलग-अलग दुनियाओं में,
एक जगह, जहाँ मैं पीढ़ियों से रहता आया हूँ,
दूसरी जगह, जहाँ मैं महज़ एक शरणार्थी हूँ,
दोनों ही जगहों पर, मैं विस्थापित हूँ।

भयभीत आँखें, क्षीणकाय शरीर,
बस भगवान ही जानते हैं कि
कितने दिनों से उन्होंने कुछ नहीं खाया,
लेकिन जब खाना मिलता है,
तो खाना देखकर भी उन्हें डर लगता है,
क्योंकि जब वह समाप्त हो जाएगा,
तो अगले दिन क्या खायेंगे वे?

3. जनसंहार

झूठ बोलते हैं अपराधी, तरह-तरह से,
जबकि दुनिया अभी भी बहस कर रही है जनसंहार पर।

तुम देख सकते हो आग, पर नहीं देख सकते
कि कैसे जलाया गया हमें,
तुम पढ़ सकते हो हत्याओं के आँकड़े,
पर नहीं जान सकते कि कैसे रेते गए हमारे गले।

उन्होंने छीनी हमारी ज़मीन,
उस पर बनाई कॉलोनियाँ और जेलें,
और वहाँ,वे हमें कैद करते हैं, टार्चर करते हैं
हमें हमारी ही जमीन पर

उन्होंने लूटा हमारा माल, उसी से खरीदे हथियार,
और फिर वे हत्या करते हैं,
कत्ल करते हैं हमारे परिवार का

मेरे साथ हुआ सामूहिक बलात्कार,
जलाया गया मुझे, छोड़ दिया मरने के लिए,
मैं ढो रही हूँ जनसंहार के दाग अपने शरीर में छिपाए।

मेरी पीड़ा का दस्तावेज़ीकरण बन गया अनेक पुरस्कारों की वजह,
पर मेरे दर्द को अब तक नहीं मिला इंसाफ़,
अब तक नहीं मिला इंसाफ।

4. खून से लथपथ कलम

मैं एक कविता लिखता हूँ
खोपड़ियों पर, हड्डियों पर और
दांतों पर,

मैं लिखता हूँ कविता
आँसुओं में,खून में और
थमती हुई साँसों में,
मेरी कलम खून से लथपथ है,
कविता मातम में डूबी है,

लेकिन फिर भी मैं लिखता रहूँगा
और एक दिन मैं एक नई कविता लिखूँगा
उल्लास में, विजय में,आज़ादी में।

5. मैं नायक नहीं बनना चाहता,

मैं शहीद नहीं बनना चाहता, मैं कायर नहीं बनना चाहता,
मैं मूढ़ नहीं बनना चाहता,मैं वह नहीं बनना चाहता
जो अन्याय को सहज ही स्वीकार कर ले...
अगर मुझे जीने के लिए सिर्फ एक पल ही मिले,
तो मैं चाहता हूँ कि उस पल
मैं अपनी स्पष्ट अंतरात्मा के साथ जिऊँ ।
और हाँ, वे कनपटी पर गोली मारते हैं,
पर वे क्या जानें कि इन्कलाब तो
दिल की धड़कनों में बसता है।

❐

फ़ासीवाद जब आएगा

टेरी एरेट
अनुवाद : राजेश चंद्रा

(टेरी एहरेट 1955 में सैन फ्रांसिस्को में जन्मी एक अमेरिकी कवयित्री हैं जिन्होंने 1977 में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय से स्नातक और 1984 में सैन फ्रांसिस्को स्टेट यूनिवर्सिटी से एम ए की उपाधि प्राप्त की। उनके कई कविता संग्रह प्रकाशित हैं। वे सैन फ्रांसिस्को खाड़ी क्षेत्र के कवियों के लिए एक साझा-कार्य प्रकाशन समूह, सिक्सटीन रिवर्स प्रेस की सह-संस्थापक भी हैं।)

जब फासीवाद आयेगा
वह दरवाज़ा नहीं तोड़ेगा, मुस्कुराते हुए भीतर आएगा
घुटनों के बल झुकेगा, प्रार्थना करेगा
और तुम्हारे ईश्वर को तुम्हारे ही विरुद्ध खड़ा कर देगा।
वह रैलियों में बाज़ार की स्तुति करेगा
गली की दुकानों से ले कर काँच की अट्टालिकाओं तक
हर जयकार में उसका नाम होगा
वह दर्शकदीर्घा से ताली बजायेगा
जब बिना बीमा वाले ग़रीब लोग
बिना इलाज सड़कों पर मरने के लिए छोड़ दिये जायेंगे
वह अपने नायकों के स्मारक खड़े करेगा और
उनके लिए रोयेगा, उनके पत्थर के चरणों में फूल चढ़ाएगा
ग्रेनाइट की दीवार पर खुदे नामों को उँगलियों से छुयेगा
और सैनिकों को मरने के लिए भेजता रहेगा
पहाड़ों में, रेगिस्तानों में
वह कबूतरों को भेजेगा अपने दुश्मनों की आँखें नोचने के लिए
क्योंकि उसके पास बाज़ फालतू नहीं होंगे

जब फ़ासीवाद आयेगा
वह सत्ता के बरामदों में चाय पियेगा
और सड़कों पर ज़हर उगलेगा
मस्जिदों, गिरजाघरों, मंदिरों के बीच
वह डर की दीवारें खड़ी करेगा– और चिल्लायेगा :
"जागो, दुश्मन तुम्हारे भीतर है! उसे कपड़ों से पहचानो!"
वह शब्द गढ़ेगा– निगमीकरण, निजीकरण, और नफ़रत को
नीति बना देगा
रेडियो पर उसी की आवाज़ होगी
स्क्रीन पर उसी का चेहरा,
और भाषा– धीरे-धीरे अपनी गहराई खो देगी
उसके पास तैयार बयान होंगे एक फेसबुक पेज होगा
और बड़े शब्दों या कठोर ध्वनियों के प्रति बेहिसाब घृणा होगी
वह पढ़ने की ज़हमत नहीं उठायेगा
विश्वविद्यालयों को ख़तरा बता कर
वह अपनी सारी किताबें चिथड़े कर देगा
वह उन्हें जलायेगा नहीं, बस उन्हें अप्रासंगिक कर देगा
वह शिक्षकों को कटघरे में खड़ा करेगा
यूनियनों को गैरकानूनी घोषित करेगा
और मूढ़ता को नाम देगा राष्ट्रभक्ति का

जब फ़ासीवाद आयेगा
वह आकर्षक दिखेगा उसके घने बाल होंगे,
इस्त्री किये हुए सूट
वह सभी चैनलों पर नियंत्रण करेगा
वह सर्वोच्च न्यायालय में बैठेगा
और क़ानून की भाषा में अन्याय लिखेगा
वह हमें भय से फुसलायेगा, आशा से रिझायेगा

जब फ़ासीवाद आएगा
वह शेयर बाज़ार में खुद के हिस्से बेचेगा
वह अमीर बनेगा, फिर बेहिसाब अमीर
फिर कर देना बंद कर देगा वह तुम्हें धूल में पड़ा रहने देगा
कुचल दिये जाने की प्रतीक्षा के साथ
तुम्हें दोबारा मूर्ख बनाने के लिए
उसे पसीना भी नहीं बहाना पड़ेगा
तुम उसके "असफल होने" का इंतज़ार करोगे
और यह इतना भी आसान नहीं होगा
वह तुम्हें हरायेगा बिना लड़े,
और तुम समझ भी नहीं पाओगे कि
तुम हार चुके हो– एक और बार

जब फ़ासीवाद आयेगा,
वह हमारी चुप्पी, उदासीनता और
आत्मसंतोष की हवाओं पर सवार होकर आयेगा
और उस दिन,
कवि इकट्ठा होंगे किताबों की दूकानों में, पुस्तकालयों में,
बारों और कैफ़े में, अपने घरों और अपार्टमेंटों में,
स्कूलों में और सड़कों के किनारों पर–
वे इकट्ठा होंगे रोते हुए, हँसते हुए, चीखते हुए
वे मानवता के उदास संगीत को
शब्दों के छोटे-छोटे टुकड़ों में लपेटेंगे
और उन्हें प्रार्थनाओं की तरह जीवन-वृक्ष पर टाँग देंगे

❐

भारत : एक भाषाई सभ्यता

गणेश एन देवी

(इनकी पुस्तक 'भारत : एक भाषाई सभ्यता' के कुछ चुनिंदा अंश डॉ. विभा चौहान द्वारा हिन्दी में प्रस्तुत)

भारतीय भाषाओं की कहानी बेहद जटिल है और किसी महाकाव्य की तरह विशाल है। अतीत और वर्तमान में इस उपमहाद्वीप में बोली जाने वाली भाषाओं की संख्या इतनी अधिक है कि उन्हें किसी एक, या सुसंगत विवरण में, नहीं समेटा जा सकता है। इनमें से कुछ भाषाओं का, असाधारण रूप से लंबे समय तक, और बिना किसी बड़े अंतराल के, उपयोग होता रहा है। इसके अलावा, भारत की भाषाई यात्रा की कहानी का कोई निश्चित प्रारंभिक बिंदु निर्धारित करना भी संभव नहीं है। भारत के बौद्धिक इतिहास में भाषाओं के वर्णन और विश्लेषण के तरीकों में आए बड़े बदलाव इस तस्वीर को और भी जटिल बना देते हैं। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में पाणिनी, जिन्हें महानतम भाषाविदों में गिना जाता है, ने अपनी अष्टाध्यायी के माध्यम से भाषा के विश्लेषण और वर्णन की एक व्यवस्थित पद्धति की अवधारणा प्रस्तुत की। उनके भाषा के विश्लेषण ने भारत में शब्दों और शब्दों के आपसी संबंधों को समझने के तरीकों पर गहरा प्रभाव डाला। पाणिनी के 22 शताब्दियों बाद, विलियम जोन्स ने भारतीय भाषाओं का एक नया आख्यान प्रस्तुत किया। उनके वर्गीकरण का भी प्रभाव इस बात पर गहरा पड़ा कि हम आज के भारत में भाषाओं को कैसे देखते हैं। दोनों दृष्टिकोणों की ज्ञानमीमांसीय बुनियादें इतनी भिन्न हैं कि दोनों में सामंजस्य स्थापित करने का न तो कभी प्रयास किया गया है, और न ही यह कभी संभव होगा।

संस्कृत के उद्भव से हजारों वर्ष पूर्व भारत में मानवों का निवास था और यह भी स्पष्ट है कि उस समय विभिन्न भाषाएँ अस्तित्व में थीं, किन्तु उन भाषाओं के कोई भी ऐसे साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जो भारत के संपूर्ण भाषाई अतीत को समझने में मदद कर सकें। मौखिक परंपराओं के सबसे प्राचीन प्रमाण लगभग 35वीं शताब्दी ईसा पूर्व के हैं और लेखन के सबसे पुराने साक्ष्य 24वीं शताब्दी ईसा पूर्व के हैं (देवी और अन्य, 2023)। एशिया के अन्य हिस्सों में, और भारत के पश्चिम में 50वीं शताब्दी ईसा पूर्व से ही लिपियों का प्रयोग होता था और आज भी यह स्पष्ट नहीं है कि भारतीय उपमहाद्वीप में लेखन देर से शुरू क्यों हुआ। सिंधु घाटी सभ्यता की अब तक अनसुलझी संकेत प्रणाली भारतीय भाषाओं के ऐतिहासिक अध्ययन को अधूरा और अनिश्चित बना देती है (रॉबिन्सन, 2009)। भारत में लेखन की शुरुआत लगभग 24वीं शताब्दी ईसा पूर्व में शिलालेखों और पांडुलिपियों के रूप में हुई। लगभग दस शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान जब कागज का उपयोग शुरू हुआ तो लेखन संस्कृति पूरी तरह से बदल गई, और पहली कुछ भारतीय भाषाओं की छपाई के आगमन के साथ दो शताब्दी ईसा पूर्व में एक और गहरा बदलाव आया। भारत के पूर्वी हिस्सों में दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व के दौरान तमिल और अन्य स्वदेशी भाषाओं के प्राचीन इतिहास के बारे आज भी हमें कोई ठोस जानकारी उपलब्ध नहीं है। हम यह जानते हैं कि समय के किसी सुदूर अनिश्चित बिंदु पर, उस दौरान, जब समाज शिकार-संग्रह से कृषि एवं पशुपालक समाज में परिवर्तित हो रहा था, तब प्राचीन द्रविड़ भाषा की एक शाखा उत्तर और दूसरी उत्तर-पश्चिम की ओर फैल गई थी। हालांकि, आज भी इसके सही समय के रहस्य पर पर्दा पड़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त, ऐतिहासिक भाषा विज्ञान में आज भी यह पता नहीं है कि आइसोलेट्स (isolates) के रूप में पहचानी जाने वाली भाषाएँ – जैसे महाराष्ट्र के बुलढाणा जिले में बोली जाने वाली नेहाली भाषा– कहाँ पैदा हुई और अपने वर्तमान स्थान पर कब पहुँचीं (देवी और अन्य, 2003)। भाषाओं की उत्पत्ति, उत्थान और परिवर्तन की स्पष्ट ऐतिहासिक तस्वीर प्रस्तुत करने में ये केवल कुछ कठिनाइयाँ हैं। ये उन कठिनाइयों में से कुछ एक ही हैं जो भाषाओं की उत्पत्ति, विकास और परिवर्तन की ऐतिहासिक तस्वीर प्रस्तुत करने में आज भी बाधाएँ बनी हुई हैं।

जब हम भारतीय भाषाओं के समाजशास्त्रीय अध्ययन की ओर मुड़ते हैं तब ऐसी ही कई जटिलताएँ हमारे सामने आ जाती हैं। पिछले दो शताब्दियों के दौरान किये गए पुरातात्विक और ऐतिहासिक शोधों ने हमें भारतीय उपमहाद्वीप में पाँच सहस्राब्दियों के दौरान, प्रारंभिक हड़प्पा काल से वर्तमान समय तक फैली भाषाओं में हुए जटिल भाषाई परिवर्तनों और प्रवासों को समझने में सक्षम बनाया है, (जोसेफ, 2018)। इस लंबी अवधि के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप ने अलग-अलग भाषाई परम्पराएँ, जो एक दूसरे से भिन्न थीं, को आत्मसात किया, जिनमें पारसी समुदाय की अवेस्तान, प्रशांत क्षेत्र की ऑस्ट्रो-एशियाई, पूर्व की तिब्बती-बर्मन, और पूर्वोत्तर एशिया की भाषाई विरासतें शामिल हैं। उत्तरी राज्यों में इंडिक (या इंडो-आर्यन) भाषाएँ, दक्षिण में द्रविड़ भाषाएँ और उत्तर-पूर्व में तिब्बती-बर्मन भाषाएँ, जिनमें से प्रत्येक की उप-शाखाएँ हैं, भारत की भाषाओं का एक प्रमुख हिस्सा हैं। उपमहाद्वीप का जितना इतिहास हमें मालूम है, उस बुनियाद पर हम यह जानते हैं कि स्वदेशी और प्रवासी भाषाओं के बीच सक्रिय आदान-प्रदान और दोनों ओर से सांस्कृतिक मिश्रण होता रहा है, जिस वजह से कई भाषाओं में महान साहित्य का निर्माण हुआ। संस्कृत और फ़ारसी का उपमहाद्वीप के व्यापक भौगोलिक क्षेत्रों में काफ़ी प्रभाव था। फिर भी, स्थानीय भाषाएँ– प्राकृत और अपभ्रंश (संस्कृत के मामले में) और देसी भाषा (फ़ारसी के मामले में)– फलती-फूलती रहीं (देशपांडे, 1993)। समय के साथ इन भाषाओं की लोकप्रियेता और प्रभाव बढ़ा, अन्य भाषाओं से इनका मिश्रण भी हुआ, और अपने विभिन्न मिश्रित रूपों के माध्यम से ये

उपर्युक्त भाषाओं (supra languages) पर हावी हो गईं। पिछली दो शताब्दियों में भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी के बीच जटिल प्रेम-घृणा का संबंध ठीक इसी प्रकार के वक्र-रेखा पर विकसित हो रहा है।

किसी भी भाषा को उसकी आसपास की भाषाओं से अलग करना सैद्धांतिक रूप से तो संभव है लेकिन यह भाषाओं की जमीनी हकीकत को प्रतिबिंब नहीं कर सकती है। इस स्थिति को समझने के लिए जनगणना द्वारा उपलब्ध कराए गए आंकड़ों पर गौर करना ज़रूरी है। ये आंकड़े दिखाते हैं कि आठवीं अनुसूची में सूचीबद्ध भाषाओं के बोलने वालों की संख्या उन भाषाओं की तुलना में कहीं अधिक है जो इस सूची में शामिल नहीं हैं। इसका एकमात्र अपवाद अंग्रेजी है। यह वृद्धि न केवल विभिन्न भाषाई राज्यों में सामान्य जनसंख्या वृद्धि के कारण है, बल्कि अनुसूची में शामिल नहीं की गई भाषाओं की गिरावट के कारण भी है। यह गिरावट स्वाभाविक है, और संभवतः नीति बनाने वालों की अपेक्षा भी ऐसी ही थी, क्योंकि भाषा शिक्षा को जो सुविधाएँ दी गई हैं वो मुख्य रूप से आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं के लिए ही दी गई हैं। आने वाले वर्षों में अन्य भाषाएँ– जो ज्यादातर आदिवासी समुदायों और ऑस्ट्रो-एशियाई परिवार और तिब्बती-बर्मन परिवारों की भाषाएँ हैं– जनसांख्यिकीय संकेतक के रूप में पूरी तरह से गायब हो सकती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हालांकि इन भाषाओं की शब्दावली और वाक्य-विन्यास पैटर्न निस्संदेह जीवित रहेंगे, लेकिन भारत की मुख्य भाषाओं में इनका और अधिक समावेश हो सकता है। यह प्रक्रिया स्वीकार करने लायक है कि नहीं, एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर केवल सांस्कृतिक मानवविज्ञानियों को ही नहीं, बल्कि हम हम सबको देना होगा।जहाँ तक मुख्य भाषाओं की बात है, तो उनके विकास की तस्वीर मिश्रित है। एक ओर, इन भाषाओं में मुद्रित सामग्रियों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है, और उन्नीसवीं शताब्दी से अब तक के मुद्रण पूंजीवाद और अंकीय प्रौद्योगिकी (digital technology) के प्रसार को देखते हुए, ये स्वाभाविक ही लगता है। दूसरी ओर, अंग्रेजी भाषा इन भाषाओं की प्रमुख प्रतिद्वंद्वी के रूप में सामने आई है। उस वर्ग के कई सदस्य, जो उन्नीसवीं सदी के दौरान, प्रमुख भारतीय भाषाओं की वकालत करते थे, अपनी आर्थिक बेहतरी के लिए अंग्रेजी को अपनाने लगे हैं। ऐसे में शहरों और उभरते हुए क्षेत्रों में, जो अभी पूरी तरह शहरी नहीं हुए हैं, भारतीय भाषाओं में साहित्य को पढ़ने वालो की संख्या में भारी गिरावट आई है।

इसके बाद भी, भारत के भाषाई रंगमंच पर एक और विरोधाभास सामने आता है। ग्रामीण क्षेत्रों में औपचारिक शिक्षा के अभूतपूर्व प्रसार ने भारतीय भाषाओं के पाठकों और लेखकों की एक नई पीढ़ी को जन्म दिया है। इस प्रक्रिया के साथ ही, कई नई बोलियों की किस्में भारत की मुख्यधारा की भाषाओं का हिस्सा बन रही हैं। जनगणना के आँकड़े बताते हैं कि अब हर तीन भारतीयों में से एक हिन्दी को अपनी मातृभाषा बताते हैं, हालाँकि, यह ध्यान रखना जरूरी है कि जिस भाषा को हिन्दी कहा और गिना जाता है, वह वास्तव में कई बोलियों, विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के रूपों, और उप-भाषाओं का एक समूह है। 1971 में 208 मिलियन (2080 लाख) लोगों ने हिन्दी को अपनी मातृभाषा बताया था और 1981 में यह संख्या बढ़कर 264 मिलियन 2640 लाख) हो गई। यह वृद्धि लगभग 55 मिलियन (550 लाख) है, जो गुजराती बोलने वालों की कुल संख्या के बराबर है। इसके विपरीत, सिंधी, नेपाली, कोंकणी, मणिपुरी, कश्मीरी और संस्कृत जैसी अनुसूचित भाषाओं के कुल बोलने वालों की संख्या 80 मिलियन (800 लाख) से अधिक नहीं है। इन दोनों छोरों के बीच ग्यारह प्रमुख भाषाएँ हैं– असमिया, बंगाली, गुजराती, मलयालम, मराठी, कन्नड़, उड़िया, पंजाबी, तमिल, तेलुगु और उर्दू– जो भारत की लगभग आधी संख्या द्वारा बोली जाती हैं।ये आँकड़े भारतीय भाषाओं के विकास की पाँच परतों की संरचना को स्पष्ट करते हैं। सबसे ऊपर हिन्दी और अंग्रेजी जैसी तेजी से बढ़ती भाषाएँ हैं। दूसरे स्तर पर बंगाली, उड़िया, मराठी, तमिल, कन्नड़ और पंजाबी जैसी प्रमुख साहित्यिक भाषाएँ हैं। हाँलाकि उर्दू भी इस श्रेणी में शामिल है, फिर भी हिन्दी और उर्दू के आपसी संबंधों पर अभी और अध्ययन करने की आवश्यकता है। इसके बाद सिंधी, मणिपुरी और कोंकणी जैसी वो मुख्य भाषाएँ हैं जो अपेक्षाकृत कम लोग बोलते हैं। इस ढाँचे के आखिर में भाषाओं के दो और समूह हैं: पहला समूह तुलु, कच्छी, अहिरानी और मारवाड़ी जैसी भाषाओं का है जिनकी अब तक मुख्यधारा से अलग कोई पहचान नहीं है, हालाँकि इनकी इस पहचान का कुछ प्रमाण भी दिया गया है। दूसरे समूह में आदिवासी और खानाबदोश समुदायों की भाषाएँ आती हैं। भंटू जैसी भाषा जिसे कंजर, सांसी और छारा जैसे समूह बोलते हैं और भीली, जिसे लगभग तीन मिलियन (30 लाख) लोग बोलते हैं, ऐसी निचले स्तर की भाषाएँ हैं जिनके विकास की संभावना अत्यंत सीमित है क्योंकि इनके सिखाने की संभावना स्कूल और कॉलेज में नहीं है और न ही इनके मुद्रण का कोई प्रयास हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पाँच-स्तर की संरचना में ऊँचे स्तर की भाषाओं का विकास अक्सर निचले स्तर की भाषाओं की कीमत पर किया जा रहा है।

वर्तमान समय में भाषाविद भारतीय भाषाओं को अलग-अलग भाषाई परिवारों के संदर्भ में रख कर चर्चा करना पसंद नहीं करते हैं।वे अब भारतीय भाषाओं की बड़ी संख्या का वर्णन एक 'भाषाई क्षेत्र' के रूप में करते हैं, जिसमें किसी भी एक भाषा और उसके आस पास की भाषाओं में एक दूसरे को समझने की क्षमता दुनिया के दूसरे हिस्सों की तुलना में कहीं अधिक है। भारतीय भाषाएँ दुनिया की और भाषाओं से केवल अपनी विशाल विभिन्नता के कारण ही अलग नहीं हैं। ये भारत के सांस्कृतिक तनावों, सामाजिक स्तरीकरण, और साथ ही सामाजिक परिवर्तन की अचूक कुंजी के रूप में भी जानी जाती हैं। यूनेस्को और एथनोलॉग के अनुसार, दुनिया में लगभग 7,000 जीवित भाषाएँ हैं, जिनमें से 12 प्रतिशत भाषाएँ भारत में बोली जाती हैं हालाँकि, यह भी सच है कि भारतीय भाषाओं में जीवित भाषाओं की कोई सटीक संख्या या निर्णायक आंकड़ा अभी उपलब्ध नहीं है। 2011 की जनगणना में 1,369 'मातृभाषाएँ' सूचीबद्ध की गई थीं लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि जनगणना के दौरान लोगों द्वारा दर्ज किया गया मातृभाषा का नाम एक 'भाषा' भी हो। दरअसल, सरकारों ने भाषा गणना के संदर्भ में कई बार ऐसे तरीके अपनाए

हैं जो आँकड़ों को कम करके दर्शाते हैं। पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया (2010-2013) ने 780 भाषाओं की सूची बनाई है लेकिन साथ ही यह भी स्वीकार किया कि उनके सर्वेक्षण से लगभग सत्तर भाषाएँ छूट गई होंगी। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत में लगभग 850 जीवित भाषाएँ हैं। इस व्यापक भाषाई विविधता की सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि अतीत के किसी भी दौर में विविधता लगभग इसी स्तर पर बनी रही।

पैंतीस शताब्दी पहले जब संस्कृत भारत में आई, तो पहले से ही ऐसी भाषाएँ मौजूद थीं जिन्हें बाद में प्राकृत और प्राचीन द्रविड़ के रूप में पहचाना गया। इसके अलावा, जहाँ भी हमारे प्राचीन पूर्वजों ने अपनी जड़ें जमाई थीं, वहाँ उनके द्वारा बनाई गई 'जनसंख्या की गांठो'ने स्थानीय भाषाओं को जन्म दिया था। जब पाणिनि ने लगभग पच्चीस शताब्दी पहले अपनी व्याकरण प्रणाली को सूत्रबद्ध किया, तब उन्होंने केवल एक भाषा ही नहीं, बल्कि कई भाषाई रूपों का उल्लेख किया। पहली सहस्राब्दी के दौरान, मतंगा की बृहदेसी और कुंतक की वक्रोक्ति-जीवित जैसी रचनाएँ विभिन्न भाषाई विविधताओं के दृष्टिकोण से लिखी गई थीं। इसके अलावा कालिदास और भवभूति के नाटकों में पात्रों को एक ही दृश्य में अलग-अलग भाषाएँ बोलते हुए देखा जा सकता है। पहली सहस्राब्दी के दौरान, अलबरूनी और अमीर खुसरो ने भी फिर से याद दिलाया कि भारतीय होने का मतलब कई भाषाओं को बोलना है। इतिहास में न तो संस्कृत और न ही फ़ारसी, अपनी आध्यात्मिक और राजनीतिक शक्ति के बावजूद, स्थानीय और क्षेत्रीय भाषाओं का स्थान ले पाईं। संस्कृत धीरे-धीरे प्रभावहीन हो गई, लेकिन प्राकृत भाषाओं का अस्तित्व बना रहा। इसी प्रकार, फ़ारसी भाषी शासकों द्वारा शासित क्षेत्रों की आधुनिक भारतीय भाषाएँ जीवित रहीं, जबकि फ़ारसी लगभग गायब हो गई। औपनिवेशिक शासन भारत के पूरे भौगोलिक क्षेत्र पर एक कानूनी ढाँचा लागू करने में सफल रहा, किन्तु मैकाले की शिक्षा नीति के बावजूद भी ब्रिटिश शासकों ने संपूर्ण भारत में एक भाषा को थोपने का प्रयास नहीं किया। भारत का भौतिक स्वरूप चाहे जैसा भी हो, यह एक भाषाई सभ्यता है। इसकी भाषाई विविधता इसका शाश्वत सांस्कृतिक विलक्षणता, इसका वंशाणु, और इसकी सबसे मूलभूत ज्ञानमीमांसीय विशेषता है। ❐

झंडा

मंजुल भारद्वाज

दो दिन देश में तिरंगा झंडा बिकता है
फुटपाथ पर, सड़क पर, रेलवे स्टेशन बस अड्डे के आसपास
छोटे आकार से बड़े आकार तक
स्टीकर, बैच और गुब्बारों के आकार में!

सब तिरंगा खरीदते हैं खुश होते हैं
देशभक्ति रग रग में दौड़ जाती है
गर्व, गौरव, स्वाभिमान से गर्दन अकड़ जाती है
छाती चौड़ी हो जाती है!

पर कभी ग़ौर किया है
झंडा बेचता कौन है? झंडा खरीदता कौन है?

झंडे बेचता है मजलूम, ग़रीब फुटपाथ पर रहने वाला
बच्चा, बच्ची, महिला, पुरुष
झंडा खरीदता कौन है? पैसे वाला!

दो दिन साल में झंडा बिकता है
बेचने वाले को दुत्कार नहीं मिलती झिड़कियाँ नहीं मिलती
पता नहीं वो दिन भर झंडे बेचकर कितनी
दिहाड़ी कमाते हैं?

साल दर साल वे झंडा बेचते हैं
पर...उनके हालात नहीं बदलते
फुटपाथ नहीं बदलता ग़रीबी पीछा नहीं छोड़ती
मज़लूमियत से मुक्ति नहीं मिलती
फ़िर भी.. वो साल में

दो दिन झंडा बेचते हैं!
ग़रीब, मुफ़लिस के लिए झंडे का क्या मतलब है?

खरीदे हुए झंडे शाम होते होते
पुनः सड़क पर बिखरे होते हैं
सुबह गर्व करने वाले खरीददार
शाम को बेफ़िक्री से सड़क पर पड़े झंडों को
रौंदते हुए चलते हैं!
खरीददारों के लिए झंडे का क्या मतलब है ?

एक इवेंट.. बस!
ग़रीबों के लिए वो सुबह कब आएगी
जिसके लिए तिरंगा फहराया जाता है?

मैत्री : एक सनातन भाव

राकेश अचल

दुनिया ने मैत्री दिवस कोई डेढ दशक पहले मनाना शुरू किया किंतु मैत्री भाव उतना ही पुराना भाव है जितना धर्म। जैसे धर्म की उत्पत्ति को लेकर दुनिया में मतैक्य नहीं है वैसे ही मैत्री को लेकर हर भूभाग में अपनी अलग परिभाषा है। लेकिन दुनिया में कोई भी ऐसा नहीं है जिसके भीतर मैत्री भाव न हो। दुनिया में दोस्ती सबसे अनमोल रिश्ता है। रक्त संबंध भी जहाँ काम नहीं आते वहाँ दोस्ती काम आ जाती है।असुर, किन्नर सब मित्रता के भूखे होते हैं यहाँ तक कि जलचर, थलचर और नभचर भी मित्रता के दीवाने होते हैं।

संयुक्त राष्ट्र ने 2011 में 30 जुलाई को आधिकारिक तौर पर अंतरराष्ट्रीय मित्रता दिवस घोषित किया था, लेकिन कई देश, विशेष रूप से भारत, इसे अगस्त के पहले रविवार को मनाते हैं। इस दिन लोग अपने दोस्तों के साथ समय बिताते हैं, उपहारों का आदान-प्रदान करते हैं, और मैत्री सूत्र बांधते हैं। साल 2025 में, यह 3 अगस्त को है। यह दिन दोस्ती के बंधन को सेलिब्रेट करने और आपसी समझ, शांति, और एकजुटता को बढ़ावा देने के लिए समर्पित है।

हमारे यहाँ मित्रता की अनंत कहानियाँ हैं। हितोपदेश की कहानियाँ तो सबसे अनूठी हैं हमारे कहानीकारों ने अंधे और लंगड़े की मैत्री की कहानियाँ खूब लिखीं। बंदर, मगर की दोस्ती, चूहे शेर की दोस्ती के कितने किस्से हैं। दर्जनों भारतीय फिल्में और उनके गीत का केंद्र ये मित्रता ही है। संस्कृत में कहावत है कि आदो मित्रोपरिक्षेत् न तो मित्रो समाश्रयेत। अर्थात मित्र बनाने से पहले उसे परखो फिर उस पर आश्रित होना चाहिए। असल मित्र वो है जो सुखमें, दुख में समभाव रखता हो।

हम लोग बचपन से मित्राश्रित रहे हैं। जिसका कोई दुश्मन न हो वो सबका मित्र यानि अजातशत्रु कहलाता है। जो सबका शत्रु होता है उसके पास भी एक न एक मित्र अवश्य होता है। मित्र समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, कारोबार, संप्रभुता सबमें उपयोगी होता है। हमारी फिल्मों के गीत तो कहते हैं कि कोई जब राह न पाए, मेरे संग आए, पग पग दीप जलाए। तेरी दोस्ती मेरा प्यार।। दोस्ती का रिश्ता ईमान का और जिंदगी भर का रिश्ता है। तभी हम कह पाते हे कि ये दोस्ती, हम नहीं तोडेंगे। यार की शादी हो या कुछ और अलग ही आनंद देता है।

सनातन कहानियाँ आपने पढ़ी ही होंगी। त्रेता में राम और केवट की मैत्री द्वापर में कृष्ण सुदामा की दोस्ती के उदाहरण आज भी दिए जाते हैं।

कृष्ण और सुदामा बचपन में गुरुकुल में साथ पढ़ते थे और गहरे मित्र बन गए। कृष्ण, जो भगवान विष्णु के अवतार थे, बाद में द्वारका के राजा बने, जबकि सुदामा एक गरीब ब्राह्मण रहे। वर्षों बाद, सुदामा की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई। उनकी पत्नी ने उन्हें कृष्ण से मदद मांगने का सुझाव दिया, लेकिन सुदामा को संकोच था। फिर भी, वह अपने मित्र से मिलने द्वारका गए, अपने साथ केवल एक मुट्ठी चावल लेकर, जो उनकी पत्नी ने प्रेम से बांधा था।

जब सुदामा द्वारका पहुँचे, कृष्ण ने उनका भव्य स्वागत किया। सुदामा की सादगी और उनके द्वारा लाए गए चावल को देखकर कृष्ण भावुक हो गए और उन्होंने वह पोहा बड़े प्रेम से खाया। सुदामा अपनी गरीबी के बारे में कुछ न कह सके, लेकिन कृष्ण, जो अंतर्यामी थे, उनकी स्थिति समझ गए।

जब सुदामा घर लौटे, तो उन्होंने देखा कि उनकी झोपड़ी एक भव्य घर में बदल गई थी, और उनकी सारी आर्थिक समस्याएँ दूर हो गई थीं। यह सब कृष्ण की कृपा थी, जिन्होंने अपने मित्र की मदद बिना कहे कर दी।

यह कहानी सच्ची मित्रता की शक्ति को दर्शाती है, जो धन, वैभव, या सामाजिक स्थिति से परे होती है। कृष्ण और सुदामा की मित्रता हमें सिखाती है कि सच्चा मित्र वही है जो बिना स्वार्थ के अपने मित्र की मदद करता है और उसका सम्मान करता है।

दुनिया में किसी का भी शासन रहा हो दोस्ती हर वक्त सराही गई। कोई भी प्रजाति हो दोस्ती सबको अजीज रही। कलियुग में दोस्ती के बिना तो बात बनती ही कहाँ है। व्यक्तियों की दोस्ती दो राष्ट्रों की दोस्ती में बदल जाती है। संस्कृतियों में भी मैत्री भाव रिश्तों को प्रगाढ़ करता है। भारत रूस की दोस्ती की तो नजीर पेश की जाती है। आजकल भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की दोस्ती अग्निपरीक्षा से गुजर रही है।

हकीकत ये है कि दोस्त के बिना कोई भी सुखी नहीं रह सकता। दोस्ती चहे पावक को साक्षी मान की जाए या बिना किसी साक्षी के अपना काम करती है। दोस्ती परस्पर प्रेम, लगाव, विश्वास, और समर्थन के मजबूत स्तंभों पर खडी होती है। दोस्ती बैसाखी नहीं है, दोस्ती आलंबन है। तीसरा नेत्र है। दोस्ती कंधा भी है और कवच भी।

बहरहाल आज आप भी अपने दोस्त के साथ दिन बिताइए। जिसके पास दोस्त नहीं होता, वो मेरी दृष्टि में सबसे गरीब इंसान है। इसलिए हरदम दोस्ती जिंदाबाद का नारा बुलंद रखिए। क्योंकि जहाँ मिल जाएँ चार यार वहीं जिंदगी गुलजार हो जाती है। ❐

उत्सव नहीं होता युद्ध

कृष्णप्रताप सिंह

अपने देश में सम्राट अशोक के बारे में कहा जाता है कि कलिंग पर कब्जे के इतिहास प्रसिद्ध युद्ध में विजय के लिए भीषण रक्तपात के बाद उनको शांति, करुणा व अहिंसा का मार्ग श्रेयस्कर लगने लगा और उन्होंने उस पर चलने के लिए 'बौद्ध धम्म' अपनाया तो दीपदान का उत्सव शुरू किया। उनके निकट यह धम्म (नैतिक) विजय का उत्सव था।

लेकिन आज की शोषण व गैरबराबरी की व्यवस्था से आक्रांत दुनिया में संचार क्रांति के जाये दृश्य माध्यमों की बलिहारी, कि उन्होंने सीधे-सीधे युद्धों को ही उत्सव बना डाला है।

यों, इन माध्यमों द्वारा युद्धों को उत्सव के रूप में पेश करने की शुरुआत 19वीं शताब्दी के मध्य में 1850 के दशक में हुई मानी जाती है, जब क्रीमिया युद्ध (1854-1856) के दौरान पहली बार किसी युद्ध की व्यवस्थित फोटोग्राफी हुई और फोटोग्राफरों ने उसमें उसकी भयावहता के बजाय किसी पक्ष की 'विजय' व 'साहस' दर्शाने वाले दृश्य कैद किए।

इसके बाद विश्व युद्धों के दौर में मीडिया व कला प्रदर्शनियों की मार्फत युद्धों को सैनिकों के बलिदान के 'वीरोचित' उत्सव और उसके गौरवशाली रोमांच से जोड़कर पेश किया गया। कहने की जरूरत नहीं कि इसके लिए उन्हें 'देशभक्ति' का लबादा भी खूब ओढ़ाया गया।

बाद में न्यूज फिल्मों ने भी यही राह अपना ली और युद्धों का उत्सव मनाते हुए उनकी पीड़ादायक वास्तविकताओं को छिपाने लग गईं।

दूसरे विश्वयुद्ध के अंतिम चरण में हर हाल में अपनी चौधराहट के आकांक्षी अमेरिका ने 6 अगस्त, 1945 को हिरोशिमा और 9 अगस्त, 1945 को नागासाकी पर परमाणु बम गिराकर जापान से आत्मसमर्पण करवा लिया तो भी उनका ढर्रा बहुत नहीं बदला और उनके निकट युद्ध उतने निंदनीय नहीं हुए, जितने हो जाने चाहिए थे। भले ही दुनिया आज भी परमाणु हमले की आशंकाओं से सिहरी रहती है।

लेकिन अब लगता है कि उनका कड़वी सच्चाइयों को वह छिपाना तो एक शुरुआत भर था, जिसका चरम पहले खाड़ी युद्ध (2 अगस्त, 1990 – 28 फरवरी, 1991) के दौरान देखने में आया। तब, जब सजीव और सीधे प्रसारणों का जादू लोगों के सिर चढ़कर बोलने लगा।

बहुत से लोगों को अभी भी याद होगा, तब उन्नत तकनीक वाले दृश्य माध्यमों ने इराक द्वारा दो अगस्त, 1990 को कुवैत पर कब्जे के लिए किए गए आक्रमण के विरुद्ध अमेरिका के नेतृत्व में 34 देशों के संयुक्त राष्ट्र-अधिकृत गठबंधन की 'डेजर्ट स्टार्म' नामक सैन्य कार्रवाई को आतिशबाजी का सा रूप दे दिया था।

जैसे कि बमवर्षक विमान बम गिराते हों तो वे फूल की तरह गिरते व फुलझड़ी की तरह फूटते हों और हाहाकार के बजाय हर्ष उत्पन्न करते व आह्लादित करते हों।

पहला टीवी युद्ध

इस कारण इसे मानव इतिहास का पहला टेलीविजन युद्ध भी कहा जाता है, जिसमें सीएनएन ने इराक की राजधानी बगदाद से बमबारी के लाइव दृश्य दिखाकर अपने दर्शकों को युद्ध को रोमांच से भर दिया था।

अनंतर, 2003-2011 के बीच अमेरिकी गठबंधन ने इराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन का तख्ता पलटने की नीयत से उनके सामूहिक विनाश के हथियारों (जो कहीं थे ही नहीं) के कथित भंडार को नष्ट करने के बहाने 'ऑपरेशन इराकी फ्रीडम' नामक दूसरा खाड़ी युद्ध (जिसे अक्सर इराक युद्ध कहा जाता है) छेड़ा, तो युद्ध को उत्सव बनाने की दृश्य माध्यमों की होड़ चरम पर जा पहुँची।

इस कदर कि सद्दाम हुसैन के पकड़े और फांसी पर लटकाने जाने तक का भरपूर सेलीब्रेशन हुआ और युद्ध से जुड़ी अनेक गंभीर चिंताएँ नेपथ्य में डालकर भुला दी गई। हालांकि तब तक युद्ध दो सेनाओं के बीच का टकराव भर नहीं रह गए थे, जो महज़ युद्ध क्षेत्र में लड़े जाते हों। यह टकराव युद्ध क्षेत्र के बाहर भी फैल गया था और उसकी जद में सैकड़ों हजारों मील दूर बैठे वे नागरिक भी आ गए थे, जिनका उससे कोई वास्ता था तो बस यही कि वे ऐसे देश में रहते थे, जो उस स्थिति का सामना करने को अभिशप्त था।

तब से अब तक दुनिया की नदियों में बहुत पानी बह चुका है और अब हम देख रहे हैं कि भले ही दुनिया एक साथ कई-कई युद्धों का सामना करने को अभिशप्त है और विश्वयुद्ध तक का अंदेशा झेल रही है, युद्ध उत्सव ही बने हुए हैं और उनसे पैदा हुआ अमानवीय उन्माद हाहाकारी तौर उनसे जुड़े सारे मानवीय पहलुओं की छाती पर सवार होकर उनके गले घोंट रहा है।

इस स्थिति का असर समाचार माध्यमों में ही नहीं बल्कि दुनिया के उन स्वनामधन्य चौधरियों के दिलो-दिमाग में भी दिखाई देता है, जो दुनिया को बारूद के ढेर पर बैठा, शांतिकामना का ढोंग रचते और कई-कई युद्धों को रुकवाने का दावा करते हैं। अमेरिका के स्वनामधन्य राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप को तो ऐसा करते हुए अपने लिए शांति के नोबेल पुरस्कार का आकांक्षी हो जाने में भी कोई विडंबना नहीं दिखाई देती।

विनाश का आनंद!

क्या आश्चर्य कि इसके चलते समाचार माध्यमों में विमानों द्वारा बम बरसाकर या मिसाइल लॉन्चरों द्वारा हमले कर 'दुश्मन' के संसाधनों को तहस-नहस किए जाने की खबरें तो भरपूर आ रही हैं, लेकिन इन सबके बीच निर्दोष नागरिकों (जिनमें मेहनतकश और आर्थिक रूप से कमजोर लोग सबसे ज्यादा होते हैं) के जान माल को पैदा हुए संकटों की बाबत खबरों का अकाल पड़ा हुआ है।

दूसरी ओर न्यूज चैनलों पर युद्धों को नाटकीय संगीत और आकर्षक ग्राफिक्स के साथ कुछ इस तरह प्रस्तुत किया जा रहा है, जो उसे जानकारीपरक बनाने के बजाय 'मनोरंजक' बनाए दे रहा है। खासकर उन लोगों के लिए जो मनुष्यता के विनाश के उपक्रमों से आनंदित होने से भी परहेज़ नहीं करते।

हद तो यह कि इजरायल द्वारा गाजा पर थोपा गया नरसंहार तक इसका अपवाद नहीं रह गया है। फिर रूस व यूक्रेन और इजरायल अमेरिका व ईरान के युद्ध या पाकिस्तान अफगानिस्तान के टकराव ही अपवाद क्योंकर हो सकते हैं। इसका अपवाद तो पाकिस्तान के विरुद्ध भारत का चार दिन का ऑपरेशन सिंदूर भी नहीं ही बन पाया।

सोचिए जरा: यह स्थिति तब है, जब युद्धजनित विभीषिकाओं से आम लोगों का जीना-मरना लगभग एक जैसा हो गया है। यानी वे ऐसी हालत में पहुँच गए हैं कि कहा जा सके कि न जी पा रहे हैं, न मर। लेकिन चूंकि वर्तमान मनुष्य विरोधी व्यवस्था में आर्थिक ढांचों के नुकसान जानी नुकसानों से बड़ी चीज हो गए हैं, इसलिए किसी को भी उनकी परवाह नहीं है।

ऐसा सत्ताधीशों की इस कुटिल 'समझदारी' के चलते है कि 'दुश्मन' के आर्थिक ढांचों को तबाह कर घुटनों के बल लाने के लिए निर्दोष नागरिकों का जीवन बेमोल या युद्धोन्माद की भेंट हो जाता है तो उसकी बहुत फिक्र करने की जरूरत तब तक नहीं है, जब तक उससे उनके अपने भविष्य या संभावनाओं पर असर नहीं पड़ता।

ऐसे में समझा जा सकता है कि क्या कारण है कि युद्धों में सैनिकों से ज्यादा निर्दोष व नागरिक हताहत होते हैं। लेकिन आर्थिक ढांचों को नुकसान न पहुँचे तो इसे बड़ी बात नहीं माना जाता और इससे जुड़ी खबरों को ढक तोपकर, छिपाकर या सेंसर करके काम चलाया जाता रहता है। कैसे?

वरिष्ठ साहित्यकार अशोक वाजपेयी ने 'द वायर हिन्दी' के अपने नियमित स्तंभ 'कभी कभार' की 29 मार्च, 2026 की कड़ी में लिखा है:

हर कहीं व्यापक समाज युद्ध के विरुद्ध ही होता है। (इसलिए) सबसे अधिक जनधन हानि समाज को ही उठानी पड़ती है। बड़ी संख्या में नागरिक हताहत होते हैं और सामान्य जनजीवन प्रभावित होता है...। युद्ध के दौरान सत्ताएँ जानबूझकर समाज का स्वयं स्थानापन्न बनने और उसे लगभग अतिक्रमित या स्थगित करने का उपक्रम करती हैं। माहौल ऐसा बनाया जाता है कि युद्ध के दौरान राज ही समाज है और समाज की स्वतंत्र सत्ता ग़ायब हो जाती है या कर दी जाती है।

वह कौन रोता है वहाँ

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' इस स्थिति के विरुद्ध गुस्सा जताते हुए बहुत पहले पूछ गए हैं:

वह कौन रोता है वहाँ–
इतिहास के अध्याय पर,
जिसमें लिखा है, नौजवानों के लहू का मोल है
प्रत्यय किसी बूढ़े, कुटिल नीतिज्ञ के व्याहार का;
जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि शीर्ष वलक्ष है;
जो आप तो लड़ता नहीं,
कटवा किशोरों को मगर,
आश्वस्त होकर सोचता,
शोणित बहा, लेकिन, गयी बच लाज सारे देश की?

***

ईश जानें, देश का लज्जा विषय
तत्त्व है कोई कि केवल आवरण
उस हलाहल-सी कुटिल द्रोहाग्नि का
जो कि जलती आ रही चिरकाल से
स्वार्थ-लोलुप सभ्यता के अग्रणी
नायकों के पेट में जठराग्नि-सी।
विश्व-मानव के हृदय निर्द्वेष में
मूल हो सकता नहीं द्रोहाग्नि का;
चाहता लड़ना नहीं समुदाय है,
फैलतीं लपटें विषैली व्यक्तियों की साँस से।

लेकिन जहाँ उनके सवालों के जवाब अभी तक नदारद हैं, वहीं युद्धोत्सव के बीच उन महिलाओं, बच्चों और बुजुर्गों की चिंताएँ भी लगातार नेपथ्य में बनी हुई हैं (कहना चाहिए, जबरदस्ती नेपथ्य में डाल दी गई हैं), जो जानें कब से युद्धों की सबसे ज्यादा कीमत चुकाने को अभिशप्त होते आए हैं।

युद्ध कोई भी और किन्हीं भी पक्षों के बीच हो, तद्जनित हिंसा, यौन शोषण, विस्थापन और अकाल वगैरह के सबसे बड़े शिकार

यही तबके हुआ करते हैं। वे युद्धों में अपने घर, शिक्षा, परिवार और बुनियादी सुरक्षा आदि सब कुछ खोकर आजीवन सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, नैतिक व मनोवैज्ञानिक नुकसान झेलने को विवश होते हैं।

इस दौरान महिलाओं को यौन हिंसा और बलात्कार आदि की अभूतपूर्व यातनाओं का सामना करना पड़ता है, जबकि बच्चों को कभी जबरन सशस्त्र बलों में भर्ती किया जाता है, कभी बरबस अपहरण जैसी घटनाओं का शिकार बनाया जाता है। भोजन, स्वच्छ पानी और चिकित्सा आदि की कमी से नाना प्रकार की कुपोषणजनित बीमारियाँ फैलती हैं, जिनका उनके शारीरिक और संज्ञानात्मक विकास पर बहुत बुरा खबर पड़ता है।

इतना ही नहीं, बच्चों की शिक्षा भी बाधित होती है और वे एक 'खोई हुई पीढ़ी' बन जाते हैं। लगातार बमबारी और हिंसा का साया बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य को गहराई से प्रभावित करता है, जिसके आघात से वे आजीवन उबर नहीं पाते। उनके परिवारों को अपने घर छोड़कर शरणार्थी बनना पड़ता है, तो वे बुनियादी सुविधाओं के अभाव में असुरक्षित जीवन जीने को मजबूर होते हैं और अनाथ हो गए तो उनके दुखों की इंतिहा ही नहीं रह जाती।

आदमीयत का तकाजा

लेकिन युद्ध के उत्सव के बीच आज भी किसी भी स्तर पर इन सबकी कोई खास चिंता नहीं दिखाई देती, जबकि गाजा और यूक्रेन जैसे संघर्ष क्षेत्रों में भी लगभग 70 प्रतिशत तक मौतें महिलाओं और बच्चों की ही हुई हैं और इराक और अमेरिका व इजरायल का युद्ध भी इसका अपवाद बनने नहीं जा रहा।

याद कीजिए: गाजा में बच्चों और महिलाओं के मारे जाने के विरुद्ध कुछ आवाजें उठीं भी तो बेशर्म और दुर्दांत इजरायल ने उनको कान देना जरूरी नहीं समझा। और अब अमेरिका द्वारा ईरान के एक स्कूल पर बम बरसाने से सैकड़ों बच्चियों की मौत हो गई तो उसे लेकर सवाल पूछे जाने पर राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप का संवेदनहीन-सा जवाब है कि वे जांच करा रहे हैं। अपनी सेना की इस हैवानियत को लेकर उनमें न कोई अपराधबोध दिखता है, न ही चिंता।

यों, यह चिंता कितनी जरूरी है, इसे इस बात से समझा जा सकता है कि एक जानकारी के अनुसार 40 करोड़ से अधिक बच्चे युद्ध क्षेत्रों में रह रहे हैं और लगभग 47.2 मिलियन विस्थापन का सामना कर रहे हैं। विडंबना यह कि एक ओर वे युद्ध को नाटकीय दृश्यों से भरे उत्सव बनते देख रहे हैं (जिनके ग्लैमर की आड़ में उनकी भयावहता से जुड़े कड़वे सच छिपे जा रहे हैं) और दूसरी ओर अपने घर, स्कूल व अस्पताल नष्ट व जीवन दुश्वार होते और मिट्टी व पानी में जहर घुलते हुए।

काश, हम और किसी नहीं तो इस स्थिति से ही विचलित होते और आदमीयत के तकाजे से कम से कम इतना समझते कि युद्ध सिर्फ और सिर्फ मृत्यु और विनाश के उत्सव हो सकते हैं। तब हम उनके शिकार हो रहे बच्चों, बुजुर्गों, बीमारों और महिलाओं के लिए कम से कम उतने तो दुखी होते, जितने अपने लिए रसोई गैस की किल्लत को लेकर हो रहे हैं। ❐

हलचल

साहित्य-संस्कृति

प्रस्तुति : रामशरण जोशी

सतयुग से कलियुग तक सत्ताधीशों का चाल, चरित्र, चेहरा तकरीबन समान रहता रहा है। राज सत्ता में आने के पश्चात शासक सत्य, मर्यादा, नैतिकता, मानवीय मूल्य, जन विश्वास, लोकहित जैसी मानव सभ्यता की उपलब्धियों की निरंकुशता के साथ अपने वर्गीय हितों की रक्षा में बलि चढ़ाने लगता है। मूल्यों के पक्षधर उपेक्षित रहते हैं, मर्यादाहीनता के पोषक सम्राट बन जाते हैं। अंधत्व सत्ताधर्म बन जाता है, अंधकार को आलोक माना जाता है,और सत्य को असत्य, असत्य को सत्य में सुविधानुसार रूपांतरित कर दिया जाता है। फिर भी भौतिक नियमों की परिधि में निरंकुश शासकों व अंधत्व राजसत्ताओं का पतन भी होता रहता है, लेकिन मानवीय मूल्यों से संचालित लोकतांत्रिक सत्ताओं का उदय भी अवश्यसंभावी है।कोई भी अमर नहीं है; भौतिक संसार के नियमों से कृष्ण भी संचालित होते हैं। स्वयं को अलौकिक मानने वालों को भी सामान्य ढंग से संसार से विदा होना पड़ता है। सब कुछ नश्वर है, फिर भी शासक 'धृतराष्ट्र' बने रहते हैं, हिटलर व नेतन्याहू बन जाते हैं। यह है सार तत्व धर्मवीर भारती के सार्विक कालजयी नाटक 'अंधायुग' का; शायद यही है बहुरूपी मोहिनी सत्ता की अनवरत त्रासदी!

कल 63 वर्ष बाद दूसरी बार अंधायुग का मंचन देखा, साथ में थीं जीवन साथी मधु जोशी। पहला मंचन था फिरोज़शाह कोटला के खंडहरों में, जिसके निर्देशक थे विश्वविख्यात नाट्यकर्मी अल्काज़ी। वह नेहरू काल था।

आज़ बदले हुए देश काल में यह दूसरा मंचन देखा। आधुनिक हाल श्रीराम सेंटर में। निश्चित ही हर दृष्टि से दोनों मंचनों में अंतर रहना स्वाभाविक है। लेकिन, महत्वपूर्ण यह है कि दूसरे मंचन के निर्देशक अरविंद गौड़ ने अंधायुग की आत्मा पर आँच आने नहीं दी। अस्मिता नाट्य संस्था के अरविंद गौड़ अपनी जनधर्मी प्रतिबद्धता के लिए विख्यात हैं। उनका नाट्यकर्म आम दर्शकों के बल पर जीवित है, कल भी हाल खचाखच भरा हुआ था। फिर भी हाल के बाहर अनेक दर्शक प्रतीक्षारत थे। यह संस्था किसी भी दल की सरकार से आर्थिक सहायता नहीं लेती है। यही वजह है कि अरविंद और उनके कलाकार ऐसे नाटकों का निर्देशन व अभिनय करना पसंद करते हैं जिनके माध्यम से मानवीय मूल्यों और आधुनिक लोकतांत्रिक चेतना का विस्तार होता है। खुशी की बात है कि चरम उपभोक्ताकाल में भी अच्छे नाटकप्रेमियों की कमी नहीं है। –प्रस्तुति : **रामशरण जोशी**

महान विचार

शाश्वत संदेश : शाश्वत मूल्य

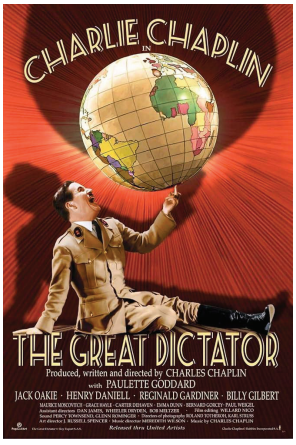

चार्ली चैपलिन की 1940 की फिल्म "द ग्रेट डिक्टेटर" (The Great Dictator) का अंतिम भाषण तानाशाही, नफरत और युद्ध के खिलाफ मानवता, प्रेम और लोकतंत्र की एक ऐतिहासिक पुकार है। यह भाषण आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जो लोगों को मशीनों की तरह नहीं, बल्कि इंसान की तरह जीने और स्वतंत्रता के लिए लड़ने का आह्वान करता है।

चार्ली चैपलिन का अंतिम भाषण

"मुझे अफ़सोस है, लेकिन मैं सम्राट नहीं बनना चाहता। यह मेरा काम नहीं है। मैं किसी पर शासन या विजय नहीं पाना चाहता। मैं यदि संभव हो तो सबकी मदद करना चाहता हूँ–यहूदी, गैर-यहूदी, काले, गोरे। हम सभी एक-दूसरे की मदद करना चाहते हैं। इंसान ऐसे ही होते हैं। हम एक-दूसरे की खुशी के साथ जीना चाहते हैं–दुःख के साथ नहीं। हम एक-दूसरे से नफरत या घृणा नहीं करना चाहते।"

"इस दुनिया में सभी के लिए जगह है। और यह अच्छी धरती समृद्ध है और सभी के लिए पोषण प्रदान कर सकती है। जीवन का तरीका स्वतंत्र और सुंदर हो सकता है, लेकिन हमने रास्ता खो दिया है। लालच ने लोगों की आत्माओं को जहर दे दिया है, दुनिया को नफरत से घेर लिया है, हमें दुखों और खून-खराबे में धकेल दिया है।"

"हमने गति विकसित की है, लेकिन हमने खुद को बंद कर लिया है। मशीनरी जो प्रचुरता देती है, उसने हमें अभाव में छोड़ दिया है। हमारा ज्ञान हमें संशयवादी बना गया है, और हमारी चतुराई कठोर और निर्दयी। हम बहुत अधिक सोचते हैं और बहुत कम महसूस करते हैं।"

"मशीनों से ज्यादा, हमें इंसानियत की जरूरत है। चतुराई से ज्यादा, हमें दयालुता और सौम्यता की जरूरत है। इन गुणों के बिना, जीवन हिंसक होगा और सब कुछ खो जाएगा।"

"हवाई जहाज और रेडियो ने हमें एक-दूसरे के करीब ला दिया है। इन आविष्कारों की बहुत प्रकृति इंसान की अच्छाई के लिए चिल्लाती है–सार्वभौमिक भाईचारे के लिए, हम सभी की एकता के लिए।"

"सैनिको! खुद को उन अनपढ़ों के हवाले न करें–जो पुरुष आपसे नफरत करते हैं–जो आपको गुलाम बनाते हैं–जो आपके जीवन को नियंत्रित करते हैं–जो आपको बताते हैं कि क्या करना है, क्या सोचना है और क्या महसूस करना है! जो आपको ड्रिल कराते हैं, आपको खाना खिलाते हैं, आपको पशु की तरह व्यवहार करते हैं, आपको तोप के चारे के रूप में इस्तेमाल करते हैं!"

"तुम मशीन नहीं हो! तुम पशु नहीं हो! तुम इंसान हो! तुम्हारे दिलों में मानवता के लिए प्रेम है! तुम नफरत नहीं करते–केवल वही नफरत करते हैं जिन्हें प्यार नहीं मिलता।"

"सैनिको! गुलामी के लिए मत लड़ो! स्वतंत्रता के लिए लड़ो!"

"लोकतंत्र की शक्ति का उपयोग करें! आइए हम सब एकजुट हों! एक नई दुनिया के लिए लड़ें–एक सभ्य दुनिया जो लोगों को काम करने का मौका देगी, जो युवाओं को भविष्य और बुढ़ापे को सुरक्षा देगी।"

"तानाशाहों ने खुद को ऊपर उठा लिया है लेकिन वे झूठ बोलते हैं! वे वादे पूरे नहीं करते। वे अपना वादा कभी पूरा नहीं करते! तानाशाह खुद को मुक्त करते हैं लेकिन वे लोगों को गुलाम बनाते हैं!"

"अब आइए हम उस वादे को पूरा करने के लिए लड़ें! दुनिया को मुक्त करने के लिए लड़ें–राष्ट्रीय बाधाओं को दूर करें–लालच, नफरत और असहिष्णुता को दूर करें।"

"एक तर्कसंगत दुनिया के लिए लड़ें–एक ऐसी दुनिया जहाँ विज्ञान और प्रगति सभी लोगों को खुशी की ओर ले जाएगी।"

"सैनिको! लोकतंत्र के नाम पर, आइए हम सब एकजुट हों!" ❐

एक ग़ज़ल

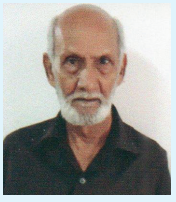

सूरज के सामने

इलियास अहमद ख़ान "हमसर"

ख़्याल कितने ही चलते रहे, मेरे दिल में
तमाम उम्र गुज़ारी तलाश-ए-मंज़िल में

मेरे चिराग़ को सूरज के सामने, रख दो
उसे पता तो चले, कोई है मुक़ाबिल में

तेरा जहाज़ भंवर में, अभी फंसा है मगर
हमारी कश्ती यहाँ आगई है, साहिल में

उजाला देख के, एहसास हो रहा है मुझे
कि मेरा यार यहाँ आगया है, महफ़िल में

बला से मेरी, न एहसास हो उसे "हमसर"
संभाल रखा है मैंने तो, ख़ाना-ए-दिल में

दो कविताएँ

जयपाल के नए और रोमांचक बिंबों वाली लघु कविताओं के संकलन 'कविता भी तुम्हें देखती है' से दो कविताएँ

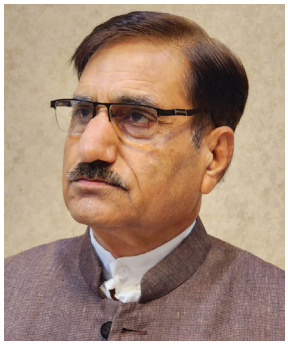

जयपाल

1. युद्ध के बाद

युद्ध के बाद
बच जाएँगे कुछ पिता
कुएँ में गिरे पक्षियों की तरह
कुछ माएँ
सूखी हुई नदियों की तरह
कुछ बच्चे बचेंगे
टूटे हुए अंडों की तरह
कुछ पड़ोसी
टूटी हुई टहनियों की तरह
शहर
जले हुए पेड़ों की तरह
और गांव
मर गई फसलों की तरह
युद्ध के बाद भी बचा रहेगा युद्ध

2. घोषणा

युद्ध की घोषणा होने वाली थी
बच्चे भूल गए थे बाहर जाकर खेलना
समय पर पहुँच जाना स्कूल
मांएँ भूल गई थीं बच्चों के लिए खिलौने खरीदना
बच्चों को देना टाफियाँ और आइसक्रीम
भाई-बहन भूल गए थे आपस में झगड़ना
चीखना-चिल्लाना और फिर मेल-मिलाप
पिता भूल गए थे काम पर जाना
वापसी में लेकर आना कुछ सामान
दादा-दादी भूल गए थे सब किस्से-कहानियाँ
शहर भूल गया था
अपनी ही सड़कों और चौराहों के नाम
युद्ध से पहले ही गर्क हो चुका था एक शहर

❐

सद्‌विचार

स्टीफन हॉकिंग अंग्रेजी सैद्धांतिक खगोल भौतिकी विज्ञानी, ब्रह्मांड विज्ञानी और लेखक थे। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अनुसंधान निदेशक भी रहे थे।

1. शांत स्वभाव के लोगों के मन सबसे अधिक गहरे और सक्रिय होते हैं।

2. अगर जीवन में हास्य न हो, तो जीवन एक त्रासदी बन जाए।

3. जब तक जीवन है, तब तक आशा है।

4. बुद्धिमत्ता का अर्थ है बदलाव के अनुसार स्वयं को ढालने की क्षमता।

5. जीवन चाहे जितना कठिन क्यों न लगे, हमेशा कुछ न कुछ ऐसा होता है, जो आप कर सकते हैं और उसमें सफल हो सकते हैं।

6. इस ब्रह्मांड का मूल नियम है कि कुछ भी पूर्ण नहीं होता। पूर्णता वास्तव में अस्तित्व में नहीं है। अपूर्णता न होती, तो न आप होते और न मैं।

7. सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आप हार न मानें।

8. पढ़ने और लगातार अधिक ज्ञान प्राप्त करने से बेहतर कुछ भी नहीं है।

9. अगर आप गुस्से में होते हैं, शिकायत करते रहते हैं, तो लोगों के पास आपके लिए समय नहीं होगा। ❐

इस अंक का मुखपृष्ठ

हमारे समय के जीवंत फ़ोटो पत्रकारिता के प्रतीक
रघु राय को श्रद्धांजलि स्वरूप

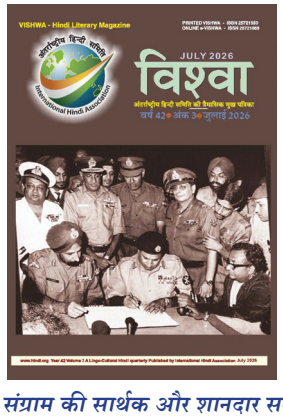

बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम की सार्थक और शानदार समाप्ति : पाकिस्तानी सेना का भारत के आगे समर्पण : दिसंबर 1971 : फ़ोटो : रघु राय

प्रसंग

हमारी अलौकिक बहुलौकिकता

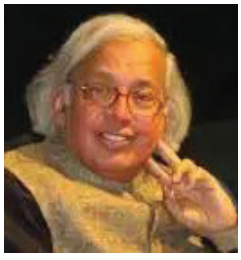

अशोक वाजपेयी

ईरान पर अमेरिकी-इज़रायली हमले से शुरू हुआ युद्ध अपनी बर्बादी, नृशंसता, अनैतिकता में लगातार फैल रहा है। बमबारी में मारी गई डेढ़ सौ बच्चियों के लिए क़ब्रों की तस्वीरें अख़बार के पहले पृष्ठ पर आई थीं। सारे अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों और समझौतों का दिनदहाड़े उल्लंघन करते हुए ईरान पर किया गया हमला दुनिया के अधिकांश देश निष्क्रिय रहकर हताश देख रहे हैं। दो सिरफिरे राजनेताओं के पागल व्यवहार और बेहद हिंसक युयुत्सा ने सारी दुनिया को स्तब्ध कर दिया है। ऐसे युद्ध सिर्फ़ मुहावरे में मानवता के विरुद्ध नहीं होते: वे मानवता के बड़े हिस्से को घायल, क्षत-विक्षत, विकलांग करते हैं।

भारत में हम, दुर्भाग्य से, ऐसे मुक़ाम पर हैं कि हमारी सरकार इस युद्ध के विरुद्ध कुछ नहीं कह पा रही है। यह राजनयिक निरूपायता, व्यापारिक और सैन्य समझौतों से नीति का लोप समझ में अपना मुश्किल है। इन दिनों हमारे सार्वजनिक जीवन में सत्तारूढ़ राजनीति ने इतिहास और परंपरा को लेकर बहुत शोर मचा रखा है। तो यह याद करने का मुकाम है कि भारतीय सर्जनात्मक, बौद्धिक और सामान्य जीवन में ईरान की भूमिका रही है।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत, ख़ासकर उसकी ख़याल परंपरा, अपने नाम, कई विधियों और अवधारणाओं में ईरानी संगीत की सदियों से ऋणी रही है। हमारा शास्त्रीय संगीत सारी दुनिया में हमारी अलग पहचान बनाता रहा है और वह पश्चिमी शास्त्रीय संगीत द्वारा सारे संगीतों को लील जाने की लिप्सा के विरुद्ध अडिग खड़ा रहा है। भारतीय मिनिएचर कला का उत्स ईरान है: वहीं के चित्रकारों से भारतीय चित्रकारों ने यह महान् कला सीखी, अपनी प्रतिभा और कौशल से विकसित की और भारतीय पौराणिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक जीवन का अत्यंत मनोहारी विशद-विपुल चित्रांकन किया।

ईरान की भाषा फ़ारसी ने भारत में व्यापकता के अलावा अद्वितीय सर्जनात्मकता अर्जित की और फ़ारसी काव्य में भारतीयों द्वारा फ़ारसी कविता की अलग धारा की, 'सबक-ए-हिन्दी' के रूप में, अलग मान्यता है। 19वीं और 20 शताब्दी के आरंभ में भारत में 2000 से अधिक पुस्तकें फ़ारसी में प्रकाशित हुई जो उस दौरान ईरान में प्रकाशित पुस्तकों से अधिक थीं।

भारत के अनेक महाकवियों ने फ़ारसी में लिखा है जिनमें बेदिल के अलावा ग़ालिब भी हैं जिनके लिखे का जितना हिस्सा उर्दू में है, उसका चौगुना हिस्सा फ़ारसी में है। भारत की एक महान् भाषा उर्दू में बहुत बड़ा हिस्सा फ़ारसी से आया है। हिन्दी और कई भारतीय भाषाओं में बहुत सारे फ़ारसी शब्द घुले-मिले हैं। कई पकवान जैसे समोसा, बर्फ़ी, हलवा आदि मूलत: ईरान के हैं।

इसलिए ईरान पर हमला, एक तरह से, भारत पर भी हमला है। हमारे सभ्यतामूलक सहचर देश पर हमला है। वहाँ दशकों से एक आततायी धार्मिक तानाशाही थी जिससे निजात पाने की ज़िम्मेदारी ईरानी जनता की है और अमेरिका-इज़रायल उसके सर्वोच्च शासक की हत्या कर दें यह किसी भी तरह से उचित नहीं कहा- समझा जा सकता। कल को कोई और देश हमारे यहाँ सत्ता-परिवर्तन करने के लिए भारत पर हमला कर दे तो क्या इसे हम स्वीकार कर लेंगे?

कई संसार

आधुनिकता की एक विडंबना यह है कि उसने हमें किसी एक संसार में रहने देने के बजाय कई संसारों में और वह भी एक साथ रहने को विवश-सा कर दिया है। हमारे अनुभव, कर्म और संवेदना में ये कई संसार गड्डमड्ड होते रहते हैं। हम एक में दाख़िल होते हैं तो दूसरों की उपस्थिति छाया की तरह हमें पछियाती रहती है। एक दूसरे से हिलगा है, भले अलग भी है। एक में दूसरे की घुसपैठ है, अंतर्ध्वनि है: एक दूसरे बल्कि दूसरों के बिना संभव ही नहीं है। समय भी शायद कई हैं- उनमें, कई बार, हमें लेकर रस्साक़शी सी रही है।

हम सचाई के संसार में रहते हुए कल्पना के संसार में भी रहते हैं: कल्पना के संसार में रहते हुए हम फिसलकर स्मृति के संसार में चले जाते हैं। हम संस्कृति, अध्यात्म, सूचना, ज्ञान, इतिहास, राजनीति, बाज़ार आदि के संसारों में विचरते हैं, भटकते और रमते रहते हैं– कई बार तो इतना कि हमें ख़बर ही नहीं लग पाती कि हम कहाँ हैं, कहाँ नहीं हैं। होना, न होना हमारी सांसारिकता को रूपायित करता रहता है।

ग़ालिब का मिसरा है: 'हरचंद कहें कि है, नहीं है!'

कविता और साहित्य का एक काम हमारी इस जटिल बहुसांसारिकता को दर्ज करना, खोजना और विन्यस्त करना है। जो साहित्य किसी एकतान संसार या समय तक अपने को महदूद रखता है वह कभी पूरी तरह से मानवीय और महत्वपूर्ण नहीं हो सकता।

हमारी यह बहुलौकिकता अलौकिक है। यह दिव्य नहीं, मानवीय चमत्कार है। यह किसी व्योम से नहीं टपकता। यह धरती पर उसकी भाषाओं में घटता है: अपनी तमाम ध्वनियों-अंतर्ध्वनियों, रूपकों-बिम्बों, प्रसंगों-वृत्तान्तों, संवेदना और मर्म, अपने विचार और सूझों के साथ। हम उसे घटते हुए देखते-सुनते-पढ़ते-समझते हैं। हम विस्मय में डूब जाते हैं, हम संसार के रहस्य को मानो छूने सा लगते हैं।

यह सब हमारे सामान्य जीवन के रोज़मर्रापन के पड़ोस में घटता है– यह हमें कहीं दूर नहीं, 'इतने पास अपने' ले आता है। हमारी कल्पना, संवेदना, यथार्थ की समझ और पहचान, जिजीविषा सब एक साथ उद्दीप्त होते हैं। दूरदराज़ भी पास आ जाता है; नक्षत्र पड़ोस में टिमटिमाने लगते हैं, दूसरे इतने अपने हो जाते हैं– हम अपनी खिड़की से हाथ बढ़ाकर आकाश को छू सकते हैं ऐसा भाव जागता है। हम सिर्फ़ संसार या संसारों में नहीं रहते– हम एक समवाय में शामिल हो जाते हैं जिसमें हरेक के पास हरेक दूसरे के लिए पाथेय है। ❐

लघु आलेख

संवाद युद्ध नहीं होता

डॉ. रीटा अरोड़ा

"तुम पागल हो क्या? इतनी छोटी सी बात समझ नहीं आती?" सोहन ने चिल्लाकर कहा।

"पागल मैं नहीं, तुम्हारा अहंकार है जो सच देखने नहीं देता," मोहन ने शांत स्वर में उत्तर दिया।

"चुप रहो! मेरी आवाज़ ऊँची है क्योंकि मैं सही हूँ।"

"नहीं सोहन, बादल वही गरजते हैं जिनमें पानी कम होता है।"

यह छोटा सा संवाद आज के समय की बातचीत का सटीक चित्रण है। हम बोलना तो बचपन में ही सीख जाते हैं, लेकिन सही समय, सही शब्द और सही तरीके से बोलना–यह समझने में पूरी उम्र निकल जाती है। आज संवाद धीरे-धीरे खत्म हो रहा है और उसकी जगह त्वरित प्रतिक्रियाओं ने ले ली है। लोग सुनते कम हैं और जवाब देने की जल्दी में ज्यादा रहते हैं।

बातचीत अब समझने का माध्यम नहीं, बल्कि खुद को सही साबित करने का जरिया बनती जा रही है। हर व्यक्ति चाहता है कि उसकी बात अंतिम हो, उसकी आवाज़ प्रभावशाली लगे। लेकिन सवाल यह है–क्या ऊँची आवाज़ और तीखे शब्द वास्तव में हमारी बात को मजबूत बनाते हैं? या वे केवल हमारे असंयम को उजागर करते हैं?

सच्चाई यह है कि शब्द अपने आप में न अच्छे होते हैं, न बुरे- उनका प्रभाव उनके प्रयोग पर निर्भर करता है। संयमित शब्द विश्वास और सम्मान पैदा करते हैं, जबकि बिना सोचे बोले गए शब्द रिश्तों में कड़वाहट घोल देते हैं। भाषा केवल अभिव्यक्ति का साधन नहीं, बल्कि हमारे व्यक्तित्व का प्रतिबिंब है।

आज के डिजिटल युग में यह जिम्मेदारी और भी बढ़ गई है। सोशल मीडिया ने हर व्यक्ति को अपनी बात रखने का मंच दिया है, लेकिन इसके साथ ही अधीरता और तीखी प्रतिक्रियाओं को भी बढ़ावा मिला है। कुछ शब्द, जो क्षणिक आवेश में लिखे जाते हैं, लंबे समय तक विवाद और दूरी का कारण बन जाते हैं।

हमें यह समझने की आवश्यकता है कि हर बात का जवाब देना जरूरी नहीं होता। कई बार खामोशी ही सबसे प्रभावशाली उत्तर होती है। सही समय पर चुप रहना और सही समय पर सही शब्द कहना–यही संतुलन परिपक्वता की पहचान है।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रश्न चाहे किसी भी लहजे में पूछा जाए, उत्तर हमेशा शालीनता और संयम के साथ दिया जाना चाहिए। समय बीतने के बाद लोग सवाल नहीं, बल्कि हमारे जवाब और व्यवहार को याद रखते हैं। हमारी भाषा ही हमारी पहचान बनती है।

अक्सर चर्चाओं में हम तर्क की मर्यादा भूल जाते हैं। उद्देश्य सत्य तक पहुँचना नहीं, बल्कि सामने वाले को नीचा दिखाना बन जाता है। ऊँची आवाज़ और तीखे शब्द हमारे तर्क को मजबूत नहीं करते, बल्कि हमारी समझ की कमजोरी को उजागर करते हैं। असली शक्ति शब्दों के शोर में नहीं, बल्कि उनके अर्थ और संवेदना में होती है।

संयमित भाषा कमजोरी नहीं, बल्कि परिपक्वता का प्रतीक है। जो व्यक्ति अपने शब्दों पर नियंत्रण रख सकता है, वही वास्तव में मजबूत होता है। शब्दों में इतनी ताकत होती है कि वे बिना शस्त्र के घाव भी कर सकते हैं और मरहम भी बन सकते हैं।

अंततः, यह हमारे हाथ में है कि हम अपनी वाणी का उपयोग कैसे करते हैं। क्या हम शब्दों से दूरी बढ़ाएँगे या रिश्तों को जोड़ेंगे?

आज दुनिया को शोर नहीं, समझदारी भरी आवाज़ों की जरूरत है।

क्योंकि सही शब्द केवल सुने नहीं जाते-वे दिलों में जगह बनाते हैं।

❐

हलचल

ग़दर पार्टी का इतिहास

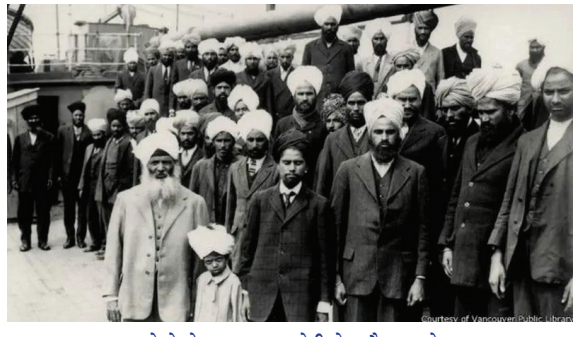

(फ़ोटो वेनकूवर लाइब्रेरी के सौजन्य से)

भारत के स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा रही ग़दर पार्टी का इतिहास अब अमरीका के बच्चे पढ़ेंगे।

पार्टी की 105 साल पूरे होने पर ओरेगन राज्य में आयोजित एक कार्यक्रम में इसकी घोषणा की गई।

अस्टोरिया शहर में हुए कार्यक्रम में सरकारी अधिकारियों ने कहा कि ग़दर पार्टी का इतिहास अब स्कूलों में पढ़ाया जाएगा।

कार्यक्रम का आयोजन गदर मेमोरियल फाउंडेशन ऑफ अस्टोरिया ने किया था।

प्रत्युत्तर

श्रेष्ठता ग्रन्थि का मोतियाबिंद

त्रिभुवन

माइकल सैवेज की वह टिप्पणी, जिसे डोनाल्ड ट्रंप ने अपने सोशल मीडिया मंच पर आगे बढ़ाया, केवल एक रेडियो-कमेंटेटर की उन्मादी वाक्-लहर नहीं थी; वह अमेरिका के उस पुराने, जिद्दी और आत्ममुग्ध श्रेष्ठताबोध की काई थी, जो बार-बार आधुनिक लोकतंत्र, मानवाधिकार और उदारवाद के चमकदार शीशे पर चढ़ आती है। ट्रंप ने अपने मुंह से भारत को 'हेलहोल' नहीं कहा, यह तथ्य है; लेकिन राजनीति में रीपोस्ट भी वक्तव्य होता है, शेयर भी संकेत होता है और चुपचाप प्रसारित किया गया अपमान भी अपमान ही रहता है।

भारतीय विदेश मंत्रालय ने भी इसे 'अनइन्फॉर्म्ड, इनऐप्रोप्रिएट एंड इन पुअर टेस्ट' कहा और स्पष्ट किया कि यह भारत-अमेरिका संबंधों की वास्तविकता को नहीं दर्शाती।

यह प्रश्न केवल इतना नहीं है किसी ने भारत को क्या कहा। प्रश्न है कि विश्व-राजनीति का सबसे शक्तिशाली मंच जब किसी देश, सभ्यता और उसके लोगों के लिए ऐसी भाषा को आगे बढ़ाता है तो वह भाषा किस मानसिक ज़ुग़राफ़िये से आती है।

राष्ट्र की जटिलताओं को 'नरक' कह देना बौद्धिक दुष्टता है

'हेलहोल' (Hellhole) गाली भर नहीं; यह साम्राज्यवादी मानसिकता का नक्शा है, जिसमें अमेरिका स्वयं को व्यवस्था, प्रकाश, नियम, अवसर और सभ्यता का केंद्र मानता है और एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका तथा प्रवासी समाजों को भीड़, अराजकता, बीमारी, गरीबी, लालच और घुसपैठ की अंधेरी सुरंगों में रखता है। यह शब्द भारत पर नहीं, उस निगाह पर आरोप-पत्र है, जो दुनिया को बराबरी से देखने की क्षमता खो चुकी है।

भारत को 'नरक' कहना भारत का अपमान नहीं, इतिहास के अमेरिकी बोध की निरक्षरता है। जिस धरती ने अमेरिका के जन्म से बहुत पहले वैदिक दर्शन दिया, विश्व को देखने की छह दृष्टियां दीं, गणित को शून्य और पाई दिए, भाषिक अनुशासन को पाणिनि दिया, दर्शन को उपनिषदों की अग्नि दी, करुणा को बुद्ध दिया, शासन और नीति को कौटिल्य दिया, अध्यात्म को योग दिया, चिकित्सा को आयुर्वेद दिया और बहुलता को जीवन का स्वभाव बनाया– उसे 'हेलहोल' कहने के लिए केवल असभ्यता नहीं, गहरी अज्ञानग्रंथि भी चाहिए।

भारत कोई स्वर्ग नहीं; हमारे यहां गरीबी है, असमानता है, भीड़ है, भ्रष्टाचार है, हिंसा है, जाति की काली गुफाएं हैं, सांप्रदायिक ज्वर है और विकास की असमान रोशनी है। लेकिन किसी राष्ट्र की जटिलताओं को 'नरक' कह देना वही बौद्धिक दुष्टता है, जिसके सहारे साम्राज्य सदियों तक अपने अपराधों को सभ्यता-मिशन कहता रहा।

अमेरिका को अपनी आँखों में थोड़ी भी ऐतिहासिक ईमानदारी बचानी है तो उसे समझना चाहिए कि महानता और दादागीरी एक ही वस्तु नहीं हैं। अमेरिका ने दुनिया को निस्संदेह बड़े वैज्ञानिक, दार्शनिक, लेखक, कलाकार, विश्वविद्यालय, तकनीकी प्रयोग और लोकतांत्रिक संघर्ष दिए हैं; लेकिन उसी अमेरिका ने मूल निवासियों के विनाश, दास प्रथा, नस्लीय विभाजन, हिरोशिमा-नागासाकी, वियतनाम, इराक, ड्रोन युद्धों, लैटिन अमेरिकी हस्तक्षेपों और आर्थिक प्रतिबंधों की लंबी छाया भी दुनिया पर डाली है।

इसलिए जब अमेरिका से कोई आवाज़ भारत जैसे देश को 'नरक' कहती है तो भारत को केवल आहत होकर नहीं, इतिहास की पूरी मेज़ खोलकर जवाब देना चाहिए कि श्रीमान्, आपके पास पशुबल रहा है, मानवता और नैतिकता का सूखा ही रहा है।

अमेरिका में भारतीय दिमागों की मौन पर स्थायी उपस्थिति

भारतीयों को अमेरिकी समाज में लेकर की गई टिप्पणी तो और भी अधिक कृतघ्नता की पराकाष्ठा है। जिस भारतीय प्रवासी समुदाय को नफरत की भाषा 'बर्थ टूरिज़्म' या 'चेन माइग्रेशन' की संदिग्ध खिड़की से देखती है, वही समुदाय अमेरिकी अर्थव्यवस्था, चिकित्सा, तकनीक, शिक्षा और उद्यमिता के सबसे अनुशासित, परिश्रमी और उच्च उपलब्धि वाले समूहों में है।

प्यू रिसर्च के अनुसार भारतीय-अमेरिकी परिवारों की 2022 की मध्यम घरेलू आय 1,45,000 डॉलर थी, जो एशियाई-अमेरिकी समुदाय की कुल मध्यम आय से भी अधिक थी; 2025 के प्यू तथ्य-पत्र के अनुसार 25 वर्ष से अधिक आयु के 77 प्रतिशत भारतीय-अमेरिकियों के पास स्नातक या उससे ऊपर की डिग्री थी। यह कोई 'नरक' से भागे हुए लोग नहीं; यह ज्ञान, अनुशासन, परिवार, शिक्षा और परिश्रम की लंबी सभ्यतागत परंपरा से निकले नागरिक हैं, जिन्होंने अमेरिका को केवल करदाता नहीं दिए, उसे दिमाग, श्रम, प्रतिष्ठा और भविष्य भी दिया।

अमेरिकी अस्पतालों की रातों में जब थकान से झुकी मशीनें बीप करती हैं, वहां भारतीय मूल के डॉक्टर, सर्जन, शोधकर्ता, फार्मासिस्ट और नर्सें जीवन की लौ बचाते हैं। अमेरिकी प्रयोगशालाओं में जब ओषधि, डेटा, जैव-प्रौद्योगिकी और सार्वजनिक स्वास्थ्य पर शोध होता है, भारतीय दिमागों की एक मौन लेकिन स्थायी उपस्थिति होती है।

अमेरिकी तकनीक की चमचमाती इमारतों में जब क्लाउड, एआई, सर्च, साइबर-सिक्योरिटी, सेमीकंडक्टर, फिनटेक और सॉफ्टवेयर की

नई भाषाएँ लिखी जाती हैं, वहां भारत केवल 'आउटसोर्सिंग' का भूगोल नहीं; वह उस बौद्धिक ऊर्जा का स्रोत है, जिसने सिलिकॉन वैली की नसों में कोड, गणना और कल्पना का रक्त प्रवाहित किया है। सुंदर पिचाई, सत्य नडेला, अरविंद कृष्ण, शांतनु नारायण, विनोद खोसला, इंद्रा नूयी, विवेक मूर्ति जैसे नाम केवल व्यक्तिगत सफलता की कहानियां नहीं; वे इस बात के जीवित प्रतिवाद हैं कि 'हेलहोल' कहे गए देश ने अमेरिका को कितनी ऊंची प्रतिभा दी है।

अमेरिकी विश्वविद्यालयों के लिए भी भारत कोई परिधि नहीं, केंद्र है। ओपन डोर्स 2025 के अनुसार 2024-25 में अमेरिका में भारत से 3,63,019 अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी थे और भारत अमेरिका के लिए अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थियों का सबसे बड़ा स्रोत बना। ये विद्यार्थी ट्यूशन-फीस भरने वाले ग्राहक मात्र नहीं हैं। वे प्रयोगशालाओं में शोध की रातें जगाते हैं, पुस्तकालयों में सिद्धांतों से जूझते हैं, कैंपस में बौद्धिक विविधता लाते हैं, अमेरिकी अर्थव्यवस्था में अरबों डॉलर जोड़ते हैं और भविष्य के उद्यमों, पेटेंटों, स्टार्टअपों तथा अकादमिक नेटवर्कों की नींव रखते हैं।

अमेरिका अपने विश्वविद्यालयों की विश्व-प्रतिष्ठा पर गर्व करता है; उसे यह भी याद रखना चाहिए कि उस प्रतिष्ठा की सीढ़ियों पर भारतीय विद्यार्थियों के कदमों की आवाज़ बहुत स्पष्ट सुनाई देती है।

साझा हित अपमान का लाइसेंस नहीं

भारत जानता है कि दोनों देशों के बीच रक्षा, तकनीक, व्यापार, ऊर्जा, शिक्षा, प्रवासी संपर्क और चीन-संतुलन जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण साझा हित हैं। लेकिन साझा हित अपमान के लाइसेंस नहीं होते। मित्रता का अर्थ यह नहीं कि वाशिंगटन से आई हर छींट को गुलाब जल समझकर माथे से लगाया जाए। मित्रता सिर झुकाकर नहीं, आंख मिलाकर होती है। दो देशों के संबंध तभी स्वस्थ होते हैं जब उनमें बराबरी का ताप हो–न कि एक ओर से उपदेश और दूसरी ओर से चुप्पी।

अमेरिका को यह भ्रम छोड़ना चाहिए कि वह दुनिया का नैतिक हेडमास्टर है और बाकी देश उसकी कक्षा में बैठे बैकबेंचर विद्यार्थी। यह इक्कीसवीं सदी है। भारत अब वह उपनिवेशोत्तर थका हुआ राष्ट्र नहीं है, जिसे वैश्विक मंचों पर केवल सहायता, अनाज, वीज़ा और उपदेश की भाषा में संबोधित किया जा सके।

यह वह देश है, जो चंद्रमा तक पहुंचता है, डिजिटल भुगतान की क्रांति करता है, दवाइयों और वैक्सीन का वैश्विक स्रोत बनता है, विशाल लोकतांत्रिक चुनाव कराता है, दुनिया की बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में शामिल है और जिसकी युवा आबादी आने वाले दशकों में वैश्विक श्रम, ज्ञान और बाजार की दिशा तय करेगी। उसके दोष हैं, पर उसकी गरिमा भी है। उसके संघर्ष हैं, पर उसका आत्मसम्मान भी है। और यह सब स्वतंत्रता के तत्काल बाद के भारत की उस आधारशिला पर टिका है, जो गांधी और नेहरू जैसे कितने नेताओं के कंधों पर खड़ी थी।

'हेलहोल' जैसी भाषा का असली खतरा यह है कि वह नीतिगत बहस को नस्ली घृणा में बदल देती है। 'बर्थराइट सिटीजनशिप' पर अमेरिका बहस करना चाहता है तो करे। संविधान, चौदहवां संशोधन, अदालतें, प्रवासन-नीति–ये सब उसके अपने लोकतांत्रिक विवाद हैं। लेकिन इस बहस में भारत, चीन या किसी भी देश को 'नरक' कहना उस लोकतांत्रिक तर्कशीलता का पतन है, जिसे अमेरिका अपने राष्ट्रीय चरित्र का मुकुट बताता रहा है।

जब नीति की जगह गाली आती है, तब लोकतंत्र भीड़तंत्र में बदलता है। जब आप्रवासी को नागरिक-सहभागी नहीं, घुसपैठिया प्राणी बना दिया जाता है, तब कानून भी पूर्वग्रह का दास बन जाता है।

अपमान को गंभीरता से लेना ही राष्ट्रीय गरिमा का पहला संस्कार

भारतीयों को भी इस प्रसंग से एक गहरी सीख लेनी चाहिए। हमारे यहां एक विचित्र वर्ग है– अंग्रेज़ चले गए, पर आत्मा में साम्राज्य की धूल संजोए लोग रह गए। ये लोग हर विदेशी नेता की ऊंची आवाज़ को विश्वबुद्धि समझ लेते हैं, हर अमेरिकी ताली में मोक्ष ढूंढते हैं और अपने ही देश के अपमान पर भी दाँत निपोरते हुए कहते हैं, 'देखिए, राजनीति है, इसे गंभीरता से न लें।'

नहीं, अपमान को गंभीरता से लेना ही राष्ट्रीय गरिमा का पहला संस्कार है। राष्ट्रवाद का अर्थ शोर नहीं, आत्म-सम्मान है। राष्ट्रवाद का अर्थ यह नहीं कि अपने नेता की हर बात पर झंडा उठाया जाए; राष्ट्रवाद का अर्थ यह है कि अपने देश की सामूहिक गरिमा पर किसी बाहरी शक्ति की अशिष्टता को सामान्य न माना जाए।

ट्रंप-भक्ति और भारत-भक्ति साथ नहीं चल सकतीं। किसी भारतीय को अमेरिकी राजनीति पसंद हो सकती है, किसी को ट्रंप की आर्थिक नीति, किसी को उनकी चीन-नीति, किसी को उनकी आप्रवासन-नीति भी पसंद हो सकती है; यह राजनीतिक मतभेद का विषय है। लेकिन जब उसी राजनीतिक धारा से भारत के लिए 'हेलहोल' जैसी भाषा आगे बढ़े और भारतीय मूल के लोगों को संदिग्ध, चालाक, अवसरवादी जनसमूह की तरह प्रस्तुत किया जाए, तब चुप रहना विचार नहीं, आत्महीनता है।

जो लोग अपने देश की धूल से अधिक किसी विदेशी नेता की जूती की चमक में सुख पाते हैं, उन्हें इतिहास बहुत सज्जन लेकिन कठोर भाषा में दर्ज करता है–दरबारी, नागरिक नहीं।

भारत की प्रतिक्रिया भी केवल सरकारी वाक्य-रचना तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। विदेश मंत्रालय का वक्तव्य आवश्यक था, लेकिन पर्याप्त नहीं। भारत को यह स्पष्ट करना चाहिए कि ऐसी भाषा न केवल अनुपयुक्त है, भारत-अमेरिका संबंधों की गरिमा के प्रतिकूल है।

अमेरिकी दूतावास यदि यह कहता है कि ट्रंप भारत को 'ग्रेट कंट्री' मानते हैं तो यह स्वागतयोग्य पर अधूरा है। सम्मान का प्रमाण निजी मित्रता के वाक्यों से नहीं, सार्वजनिक अपमान से असहमति जताने से मिलता है। यदि भारत सचमुच मित्र है, तो भारत के बारे में 'हेलहोल' जैसी भाषा को आगे बढ़ाने पर साफ़ ख़ेद, स्पष्ट दूरी और सार्वजनिक स्पष्टीकरण होना चाहिए।

यह भी याद रखा जाना चाहिए कि अमेरिका की शक्ति ने अक्सर

भाषा के माध्यम से ही दुनिया पर नियंत्रण बनाया है। पहले वह किसी देश को अस्थिर कहता है, फिर असुरक्षित; फिर उसे पिछड़ा, कट्टर, अराजक, असभ्य या विफल घोषित करता है; फिर वहां हस्तक्षेप, प्रतिबंध, सैन्य उपस्थिति, वीज़ा-नियंत्रण, व्यापार दबाव या नैतिक उपदेश को वैध ठहराता है।

शब्द कभी अकेले नहीं आते; वे नीति की पूर्व-छाया होते हैं। इसलिए 'हेलहोल' जैसे शब्द को केवल मूर्खतापूर्ण टिप्पणी मानकर छोड़ देना भोलेपन की पराकाष्ठा होगी। ऐसे शब्द उन मानसिक नक्शों को बनाते हैं, जिन पर बाद में विदेश नीति की सड़कें खिंचती हैं।

होगा अमेरिका शक्तिशाली है, पर शक्ति सभ्यता का लाइसेंस नहीं

भारत को अपनी महत्ता साबित करने के लिए अमेरिका को नीचा दिखाने की आवश्यकता नहीं। लेकिन अमेरिका को अपनी शक्ति सिद्ध करने के लिए भारत को गाली देने का अधिकार भी नहीं। भारतीय सभ्यता की गरिमा इस बात में है कि वह प्रतिशोधी अभद्रता में नहीं उतरती; लेकिन उसकी कमज़ोरी भी नहीं कि वह हर अपमान पर मौन साध ले।

भारत का उत्तर सभ्य होना चाहिए, पर निर्बल नहीं; तीखा होना चाहिए, पर तथ्यहीन नहीं; गरिमामय होना चाहिए, पर दंतहीन नहीं। हमें कहना चाहिए, आपका देश शक्तिशाली है, पर शक्ति आपको सभ्यता का लाइसेंस नहीं देती। आपकी अर्थव्यवस्था बड़ी है, पर बड़ी अर्थव्यवस्था बड़ा चरित्र सिद्ध नहीं करती। आपकी सेना विशाल है, पर सैन्य क्षमता नैतिक ऊंचाई का पर्याय नहीं। आपकी विश्वविद्यालय-व्यवस्था प्रभावशाली है, पर उसके गलियारों में भारतीय प्रतिभा भी उतनी ही गूंजती है, जितनी आपकी अपनी।

भारत को 'नरक' कहने वाली भाषा अंततः भारत की नहीं, अमेरिका की परीक्षा है। यह देखना अब अमेरिका को है कि वह अपने उदार लोकतांत्रिक आदर्शों की ओर लौटता है या चुनावी उन्माद, नस्ली भय और आप्रवासी-विरोधी जुनून के गंदे नाले में उतरता है। वह तय करे कि उसे फ्रैंकलिन, लिंकन, मार्टिन लूथर किंग, जेम्स बाल्डविन, एमर्सन, थोरो, व्हिटमैन और माया एंजेलो की नैतिक परंपरा में खड़ा होना है या उन रेडियो-स्टूडियो की अंधेरी गुफाओं में जहां सभ्यताओं को गाली बनाकर बेचा जाता है।

अमेरिका यदि अपने महान आदर्शों को बचाना चाहता है तो उसे पहले अपनी भाषा को बचाना होगा।

और भारत?

भारत को इस प्रसंग से क्रोधित होने से अधिक सजग होना चाहिए। हमें अपनी शक्ति, अपनी प्रतिभा, अपनी सभ्यता और अपने प्रवासी समुदाय की गरिमा को किसी विदेशी प्रमाणपत्र से मापना बंद करना होगा। हमारी महानता हमारे इतिहास, हमारे ज्ञान, हमारे श्रम, हमारे लोकतांत्रिक संघर्ष, हमारी भाषाओं, हमारी स्त्रियों, हमारे किसानों, हमारे वैज्ञानिकों, हमारे विद्यार्थियों, हमारे सैनिकों, हमारे कारीगरों, हमारे श्रमिकों, हमारे प्रवासियों और हमारी जनता की उस अद्भुत जीवटता में है, जो अपमान को भी कभी-कभी ऊर्जा में बदल देती है।

भारत किसी के इमिग्रेशन-भय का कूड़ादान नहीं है। अमेरिका से संबंध चाहिए–पर समानता के साथ। व्यापार चाहिए–पर गरिमा के साथ। रणनीतिक साझेदारी चाहिए–पर आत्मसम्मान के साथ। मित्रता चाहिए-पर ऐसी मित्रता नहीं, जिसमें एक पक्ष मुस्कुराता रहे और दूसरा पक्ष उसके घर को 'नरक' कहने वाली भाषा को आगे बढ़ाता रहे।

यह समय भारत के लिए कूटनीतिक विनम्रता और राष्ट्रीय दृढ़ता को साथ लेकर चलने का है। हमें अमेरिका से दुश्मनी नहीं, पर अमेरिका के श्रेष्ठताबोध से असहमति अवश्य रखनी है। हमें अमेरिकी जनता से वैर नहीं, पर अमेरिकी राजनीतिक अहंकार को आईना ज़रूर दिखाना है। हमें भारतीय प्रवासियों की उपलब्धियों पर गर्व करना है, पर उन्हें अमेरिकी स्वीकृति की भीख में बदलना नहीं। और हमें अपने देशवासियों से कहना है– स्वाभिमान कोई चुनावी नारा नहीं, राष्ट्र की रीढ़ है। जो रीढ़ झुक गई, वह राष्ट्र नहीं, भीड़ रह जाता है।

इसलिए उत्तर साफ है: भारत 'हेलहोल' नहीं है। भारत एक महान, जटिल, संघर्षशील, असमानताओं से जूझता हुआ, फिर भी अद्भुत ऊर्जा से भरा राष्ट्र है। अगर किसी को इसमें नरक दिखता है तो संभव है कि उसकी आँखों में ही वह अंधेरा हो, जिसे वह दुनिया पर आरोपित कर रहा है। अमेरिका को भारत से माफी नहीं तो कम-से-कम स्पष्ट खेद और असहमति अवश्य व्यक्त करनी चाहिए।

और भारत को, अपनी पुरानी सभ्यता की शांत आंखों और नए राष्ट्र की दृढ़ आवाज़ के साथ, इतना अवश्य कहना चाहिए-मित्रता स्वीकार है; अपमान नहीं। ❐

श्रद्धांजलि

भारतीय जीवन के विविध रंगों को अपने कैमरे की आँख से देखने वाले पद्मश्री रघु राय का 26 अप्रैल 2026 को लंबी बीमारी के बाद 84 वर्ष आयु में निधन। दुनिया की लगभग सभी प्रमुख पत्रिकाओं के प्रकाशित फ़ोटो के साथ साथ भोपाल गैस त्रासदी, बांग्ला देश का मुक्ति संग्राम, ऑपरेशन ब्लू स्टार पर उनके कवरेज विशेष उल्लेखनीय माने गए।

12 अप्रैल 2026 को 92 वर्ष की आयु में निधन।

भारत की विभिन्न भाषाओं में 12 हजार से अधिक गीत गाने वाली एक विविधरंगी और रेंज वाली पुरस्कारों से भी बड़ी, एक अतिविशिष्ट आवाज। बस, दिल चीज क्या है ..... ।

स्वैच्छिक संतानहीनता

डॉ. शैलेश शुक्ला

समकालीन वैश्विक परिदृश्य में, जहाँ मानव सभ्यता अभूतपूर्व तकनीकी प्रगति और गहन पर्यावरणीय संकट के बीच खड़ी है, व्यक्तिगत जीवन-निर्णयों का महत्व केवल निजी दायरे तक सीमित नहीं रह गया है। वे अब सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक प्रभावों से गहराई से जुड़े हुए हैं। ऐसे समय में यह विचार कि एक दंपत्ति स्वेच्छा से संतान न रखने का निर्णय लेता है, केवल एक व्यक्तिगत विकल्प के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि इसे एक व्यापक नैतिक, बौद्धिक और पर्यावरणीय दृष्टिकोण के रूप में समझा जाना चाहिए। जब कोई दंपत्ति स्वयं को DINK—डबल इनकम, नो किड्स—के रूप में पहचानता है और इस पर गर्व करता है, तो वह वस्तुतः एक ऐसे जीवन-दर्शन का प्रतिनिधित्व करता है जो परंपरागत मान्यताओं से परे जाकर जिम्मेदारी, संतुलन और दूरदर्शिता को प्राथमिकता देता है।

(श्रीमती पूनम चतुर्वेदी शुक्ला और शैलेन्द्र शुक्ला)

यह निर्णय, जैसा कि अक्सर समझा जाता है, किसी प्रकार की कमी, असमर्थता या जिम्मेदारियों से पलायन का परिणाम नहीं होता, बल्कि इसके पीछे गहन विचार और आत्मचिंतन की प्रक्रिया होती है। आधुनिक समाज में, जहाँ हर व्यक्ति अपने निर्णयों के दूरगामी प्रभावों के प्रति अधिक सजग हो रहा है, वहाँ संतानोत्पत्ति जैसे महत्वपूर्ण विषय पर भी विचारशीलता आवश्यक हो जाती है। जब हम अपने चारों ओर बढ़ती जनसंख्या, सीमित होते प्राकृतिक संसाधन और पर्यावरण पर बढ़ते दबाव को देखते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक नया जीवन केवल एक जैविक घटना नहीं, बल्कि संसाधनों की एक नई मांग और पर्यावरण पर एक अतिरिक्त भार भी है। यह विचार कि हर नया जन्म अपने साथ एक कार्बन फुटप्रिंट लेकर आता है, अब केवल सैद्धांतिक अवधारणा नहीं रह गई है, बल्कि वैज्ञानिक अध्ययनों और पर्यावरणीय विश्लेषणों द्वारा प्रमाणित एक वास्तविकता है।

हमें गर्व है—हम एक DINK दंपत्ति हैं। मैं और मेरी धर्मपत्नी श्रीमती पूनम चतुर्वेदी शुक्ला इस निर्णय को केवल अपने निजी जीवन की व्यवस्था के रूप में नहीं देखते, बल्कि इसे एक विचारशील, नैतिक और जिम्मेदार जीवन-दृष्टि के रूप में समझते हैं। यह कहना जितना सरल है, इस निर्णय तक पहुँचना उतना ही गहन आत्ममंथन, विमर्श और वास्तविकताओं के ईमानदार सामना करने की प्रक्रिया से होकर गुजरा है। हमने यह निर्णय किसी दबाव, भय, सामाजिक असफलता, जिम्मेदारियों से भागने या किसी असमर्थता के कारण नहीं लिया। इसके विपरीत, हमने इसे पूरी जागरूकता, समझ और विवेक के साथ स्वेच्छा से चुना है। हमारे लिए यह एक प्रतिक्रियात्मक निर्णय नहीं, बल्कि एक सक्रिय और सकारात्मक चयन है—ऐसा चयन जो हमारे समय, हमारे परिवेश और हमारे दायित्वों की गहरी समझ से उत्पन्न हुआ है।

जब हम अपने चारों ओर देखते हैं, तो एक ऐसी दुनिया दिखाई देती है जो लगातार विस्तार कर रही है, लेकिन उसी अनुपात में संकुचित भी हो रही है। जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है, लेकिन संसाधन उसी गति से नहीं बढ़ रहे। शहर फैल रहे हैं, लेकिन सांस लेने की जगह कम हो रही है। विकास हो रहा है, लेकिन पर्यावरण का संतुलन बिगड़ रहा है। यह विरोधाभास हमें बार-बार सोचने पर मजबूर करता है कि क्या हम वास्तव में उस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं जिसे हम प्रगति कहते हैं, या हम अनजाने में एक ऐसे संकट की ओर बढ़ रहे हैं जिसे आने वाली पीढ़ियाँ झेलेंगी। इसी संदर्भ में हमने यह समझने का प्रयास किया कि हमारे व्यक्तिगत निर्णय इस व्यापक परिदृश्य में क्या भूमिका निभाते हैं।

हमारे लिए यह एक महत्वपूर्ण बिंदु था जब हमने यह महसूस किया कि इस धरती पर हर नया जीवन अपने साथ केवल संभावनाएँ ही नहीं, बल्कि एक अतिरिक्त कार्बन फुटप्रिंट भी लेकर आता है। यह विचार प्रारंभ में एक सैद्धांतिक अवधारणा जैसा लगा, लेकिन जब हमने इसे गहराई से समझा, तो यह हमारे निर्णय का एक केंद्रीय आधार बन गया। हर व्यक्ति अपने जीवनकाल में पानी, ऊर्जा, भोजन और अन्य संसाधनों का उपभोग करता है, और साथ ही वह कचरा और उत्सर्जन भी उत्पन्न करता है। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, लेकिन जब अरबों लोग ऐसा करते हैं, तो इसका प्रभाव अस्वाभाविक रूप से बढ़ जाता है। हमने यह महसूस किया कि यदि हम सच में पर्यावरणीय संकटों—जैसे जलवायु परिवर्तन, जल संकट और प्रदूषण—को लेकर चिंतित हैं, तो हमें अपने जीवन के सबसे मूलभूत निर्णयों पर भी पुनर्विचार करना होगा।

इसी समझ के आधार पर हमने यह निर्णय लिया कि हम अपनी मातृभूमि और इस पृथ्वी को अनावश्यक बोझ से बचाने में अपना छोटा-सा योगदान देंगे। यह योगदान किसी बड़े आंदोलन या सार्वजनिक घोषणा के रूप में नहीं, बल्कि एक शांत, व्यक्तिगत और सुसंगत निर्णय के रूप में सामने आया। हमने यह नहीं सोचा कि हमारा यह निर्णय दुनिया को बदल देगा, लेकिन हमने यह अवश्य माना कि यदि हर व्यक्ति अपने स्तर पर जिम्मेदारी ले, तो सामूहिक परिवर्तन संभव है। हमारे लिए यह निर्णय एक प्रकार की नैतिक संतुष्टि का स्रोत भी है—यह जानना कि हम अपने विश्वासों और अपने कार्यों

के बीच एकरूपता बनाए हुए हैं।

हमारे लिए DINK होना किसी प्रकार का त्याग नहीं है, जैसा कि अक्सर समाज में समझा जाता है। इसके विपरीत, यह एक सशक्त और सकारात्मक चयन है। यह हमें अपने जीवन को अधिक सजगता, स्वतंत्रता और गहराई के साथ जीने का अवसर देता है। जब हमारे जीवन में संतान की जिम्मेदारियाँ नहीं हैं, तो हमारे पास समय और ऊर्जा का एक ऐसा विस्तार है जिसे हम अपने बौद्धिक विकास, शोध, लेखन और रचनात्मक कार्यों में निवेश कर सकते हैं। हम अपने विचारों को विकसित कर सकते हैं, नए ज्ञान की खोज कर सकते हैं और अपने कार्यक्षेत्र में अधिक केंद्रित और प्रभावी योगदान दे सकते हैं। यह केवल व्यक्तिगत संतुष्टि का विषय नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक योगदान का भी माध्यम है।

इसके साथ ही, हमारे पास अपने सामाजिक सरोकारों के लिए भी अधिक समय और संसाधन हैं। हम समाज के उन वर्गों के लिए कुछ कर सकते हैं जो वंचित हैं, जिन्हें अवसरों की आवश्यकता है, और जिन्हें थोड़ी सी सहायता से अपने जीवन को बेहतर बनाने का अवसर मिल सकता है। हम अपने ज्ञान, अपने अनुभव और अपने संसाधनों को उन लोगों के साथ साझा कर सकते हैं जिन्हें इसकी आवश्यकता है। इस प्रकार, हमारा जीवन केवल हमारे लिए नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अर्थपूर्ण बनता है।

हम यह भी मानते हैं कि अभिभावक बनना एक अत्यंत महान और गंभीर दायित्व है। यह केवल एक भावनात्मक अनुभव नहीं, बल्कि एक दीर्घकालिक जिम्मेदारी है जिसमें समय, संसाधन, धैर्य और निरंतर प्रयास की आवश्यकता होती है। लेकिन हम यह भी मानते हैं कि इस जिम्मेदारी को निभाने का एकमात्र मार्ग जैविक अभिभावक बनना ही नहीं है। समाज में पहले से ही अनेक ऐसे बच्चे हैं जिन्हें शिक्षा, स्नेह और मार्गदर्शन की आवश्यकता है। यदि हम अपने समय और संसाधनों को इन बच्चों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए उपयोग करते हैं, तो यह भी एक प्रकार का अभिभावकत्व ही है—और कई बार यह अधिक व्यापक और प्रभावशाली हो सकता है।

हमारे लिए यह समझ अत्यंत महत्वपूर्ण रही है कि जीवन की सार्थकता केवल पारिवारिक विस्तार में नहीं, बल्कि उस प्रभाव में निहित है जो हम अपने आसपास के समाज और पर्यावरण पर छोड़ते हैं। हम यह नहीं मानते कि हमारा मार्ग ही एकमात्र सही मार्ग है, लेकिन हम यह अवश्य मानते हैं कि यह एक वैध, विचारशील और जिम्मेदार विकल्प है। हम अपने इस निर्णय के माध्यम से केवल यह दिखाना चाहते हैं कि जीवन को जीने के कई तरीके हो सकते हैं, और प्रत्येक व्यक्ति को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह अपने विवेक और परिस्थितियों के अनुसार अपना मार्ग चुन सके।

हमारे इस निर्णय के साथ एक और महत्वपूर्ण अनुभव जुड़ा रहा है—समाज के साथ संवाद का अनुभव। हम यह भलीभाँति समझते हैं कि जिस समाज में हम रहते हैं, वहाँ संतान को जीवन का स्वाभाविक और अनिवार्य हिस्सा माना जाता है। ऐसे में जब हम यह कहते हैं कि हमने स्वेच्छा से संतान न रखने का निर्णय लिया है, तो स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठते हैं, जिज्ञासाएँ जन्म लेती हैं, और कभी-कभी असहमति भी सामने आती है। लेकिन हमने इन सभी प्रतिक्रियाओं को एक अवसर के रूप में देखा—एक ऐसे अवसर के रूप में जिसमें हम अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट कर सकें और साथ ही दूसरों के विचारों को भी समझ सकें। हमारे लिए यह संवाद किसी बहस या टकराव का विषय नहीं रहा, बल्कि एक स्वस्थ विमर्श का हिस्सा रहा है। हम यह मानते हैं कि एक प्रगतिशील समाज वही होता है जो विविध जीवनशैलियों और दृष्टिकोणों को स्वीकार करने की क्षमता रखता है।

हमने यह भी अनुभव किया है कि बहुत बार लोग संतानोत्पत्ति को केवल एक व्यक्तिगत इच्छा या सामाजिक परंपरा के रूप में देखते हैं, लेकिन उसके दूरगामी परिणामों पर उतना ध्यान नहीं देते। जब हम उनसे यह साझा करते हैं कि हमने अपने निर्णय को पर्यावरण, संसाधनों और भविष्य की पीढ़ियों के संदर्भ में देखा है, तो यह एक नई सोच को जन्म देता है। यह कहना कि हर नया जीवन एक अतिरिक्त कार्बन फुटप्रिंट लेकर आता है, कुछ लोगों के लिए प्रारंभ में असहज करने वाला विचार हो सकता है, लेकिन जब इसे व्यापक संदर्भ में समझाया जाता है, तो यह एक गंभीर और प्रासंगिक प्रश्न बन जाता है। हम यह नहीं कहते कि संतान होना गलत है, लेकिन हम यह अवश्य कहते हैं कि यह निर्णय जितना व्यक्तिगत है, उतना ही जिम्मेदार भी होना चाहिए।

समय के साथ हमने यह भी महसूस किया है कि DINK जीवनशैली हमें केवल स्वतंत्रता ही नहीं, बल्कि एक विशेष प्रकार की स्पष्टता भी प्रदान करती है। जब जीवन में कुछ पारंपरिक जिम्मेदारियाँ नहीं होतीं, तो व्यक्ति अपने उद्देश्यों, अपने मूल्यों और अपनी प्राथमिकताओं को अधिक स्पष्ट रूप से देख पाता है। हमारे लिए यह स्पष्टता अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। हमने अपने जीवन को केवल जीविका तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे एक उद्देश्यपूर्ण दिशा देने का प्रयास किया है। हमारे पास यह अवसर है कि हम अपने बौद्धिक विकास पर ध्यान दें, नए विचारों पर काम करें, लेखन और शोध के माध्यम से समाज में योगदान दें, और उन विषयों पर गंभीरता से विचार करें जो हमारे समय के लिए महत्वपूर्ण हैं।

इसके साथ ही, हमने अपने जीवन में सामाजिक उत्तरदायित्व को भी एक केंद्रीय स्थान दिया है। जब हमारे पास समय और संसाधनों का अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण होता है, तो यह स्वाभाविक है कि हम उन्हें केवल अपने लिए उपयोग न करें, बल्कि समाज के उन वर्गों के लिए भी उपयोग करें जिन्हें इसकी आवश्यकता है। हमने यह समझा

है कि समाज में पहले से ही अनेक ऐसे बच्चे और युवा हैं जिन्हें केवल थोड़ी सी मार्गदर्शन, शिक्षा और समर्थन की आवश्यकता है। यदि हम अपने प्रयासों से उनके जीवन में सकारात्मक परिवर्तन ला सकते हैं, तो यह किसी भी प्रकार के अभिभावकत्व से कम नहीं है। इस प्रकार, हमारा जीवन केवल व्यक्तिगत संतुष्टि तक सीमित नहीं रहता, बल्कि एक व्यापक सामाजिक प्रभाव का माध्यम बनता है।

राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर भी हम अपने निर्णय के प्रभाव को एक सूक्ष्म लेकिन महत्वपूर्ण रूप में देखते हैं। जब हम जनसंख्या के प्रश्न को देखते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि कम जनसंख्या का अर्थ केवल कम लोग नहीं, बल्कि संसाधनों का अधिक संतुलित उपयोग है। इसका अर्थ है कि शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी, ऊर्जा और अन्य आवश्यक संसाधनों पर दबाव कम होगा, और उनकी उपलब्धता अधिक न्यायसंगत होगी। इससे जीवन की गुणवत्ता में सुधार होगा और समाज अधिक स्थिर और संतुलित बन सकेगा। हम यह नहीं मानते कि केवल हमारे जैसे निर्णयों से ही यह परिवर्तन आ जाएगा, लेकिन हम यह अवश्य मानते हैं कि यह दिशा सही है और इस दिशा में उठाया गया हर कदम महत्वपूर्ण है।

पर्यावरणीय दृष्टि से भी हमारा यह निर्णय हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों के क्षय जैसे मुद्दे अब केवल वैज्ञानिक या नीतिगत बहस का विषय नहीं रहे, बल्कि वे हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बन चुके हैं। हमने यह महसूस किया है कि यदि हम वास्तव में इन समस्याओं के प्रति संवेदनशील हैं, तो हमें अपने जीवन में ऐसे निर्णय लेने होंगे जो इन समस्याओं को कम करने में योगदान दें। DINK जीवनशैली हमारे लिए ऐसा ही एक निर्णय है—एक ऐसा निर्णय जो हमें यह संतोष देता है कि हम अपने स्तर पर पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभा रहे हैं।

हम यह भी स्पष्ट रूप से कहना चाहते हैं कि हमारा उद्देश्य किसी जीवनशैली को श्रेष्ठ सिद्ध करना नहीं है। हम यह नहीं मानते कि जो लोग संतान रखते हैं, उनका निर्णय गलत है, और न ही हम यह अपेक्षा करते हैं कि सभी लोग हमारे मार्ग का अनुसरण करें। हमारा उद्देश्य केवल यह है कि इस विषय पर एक खुला और ईमानदार संवाद हो, जिसमें लोग अपने निर्णयों को अधिक सजगता और जिम्मेदारी के साथ लें। हम यह मानते हैं कि जागरूक विकल्प भी उतने ही वैध और सम्माननीय होते हैं जितने पारंपरिक विकल्प।

अंततः, हमारे लिए DINK होना केवल "नो किड्स" का निर्णय नहीं है, बल्कि "मोर कॉन्शस लिविंग" की एक व्यापक अवधारणा है। यह एक ऐसा जीवन है जिसमें हम अपने अस्तित्व को केवल व्यक्तिगत सीमाओं तक सीमित नहीं रखते, बल्कि उसे समाज, राष्ट्र और इस पृथ्वी के व्यापक हित से जोड़कर देखते हैं। यह दृष्टिकोण हमें न केवल अधिक जिम्मेदार बनाता है, बल्कि हमें एक गहरी आंतरिक संतुष्टि भी प्रदान करता है। हमें यह महसूस होता है कि हम अपने जीवन को केवल जी नहीं रहे हैं, बल्कि उसे समझ रहे हैं, उसे दिशा दे रहे हैं, और उसे एक ऐसे उद्देश्य से जोड़ रहे हैं जो हमसे बड़ा है।

हमें अपने इस चयन पर गर्व है, क्योंकि यह हमें न केवल बेहतर इंसान बनने का अवसर देता है, बल्कि इस धरती के प्रति अपने दायित्व को निभाने की संतुष्टि भी प्रदान करता है। यह गर्व किसी अहंकार से नहीं, बल्कि उस शांति और स्पष्टता से उत्पन्न होता है जो तब मिलती है जब हमारे विचार, हमारे निर्णय और हमारे कर्म एक-दूसरे के साथ सामंजस्य में होते हैं। यही सामंजस्य हमारे लिए इस जीवन-दृष्टि का सबसे बड़ा पुरस्कार है।

❐

किताबें

1. अलकनंदा सुत

'अलकनंदा सुत' पहाड़ (हिमालय की तलहटी) की मूल निवासी अर्चना पैन्यूली लंबे समय से डेनमार्क में कार्यरत हैं। वहाँ के जीवन और भारतीय प्रवासियों के अंतर्द्वंद्व पर उनके कई सफल उपन्यास और कहानियाँ है। प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने अपनी जन्म भूमि पहाड़ और उसके निवासियों के संघर्ष को अपना विषय बनाया है।

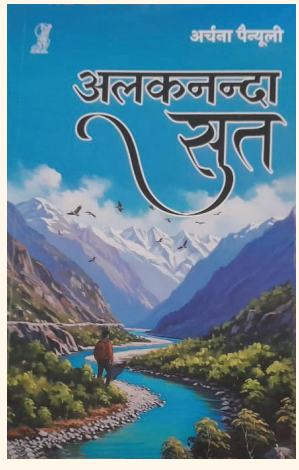

पहाड़ से जिनकी गर्भनाल जुड़ी है वे ही पहाड़ को समझ सकते हैं। पहाड़ पर चढ़ना जितना कठिन है उतना ही पहाड़ से उतरना। चढ़ने की मुद्रा अलग होती है तो उतरने की अलग लेकिन दोनों ही स्थितियों में पहाड़ किसी न किसी रूप में उनके कंधों पर होता है। जो पहाड़ पर जाकर बसे उनका जल, जलावन और जीविकोपार्जन का संघर्ष शब्दातीत है तो अब पुनः जीविका के लिए सब कुछ छोड़कर अनजान शहरों में उतर आना और इस प्रतियोगी और अहंकारी शहरी सभ्यता में जगह बनाना किसी सीधे सादे पहाड़ी के लिए कितना कठिन है यह भुक्तभोगी ही जानता है। हम जैसे लोग जिनका 'टिहरी' 'बांध' में डूब गया वे क्या दिखाएं और क्या बताएँ?

शिवानंद जैसे अलकनंदा और अन्य नदियों की घाटियों प्रयाग-पुत्रों के बहाने समूचे पहाड़ का संघर्ष और संस्कृति बड़े जीवंत रूप में चित्रित हुए हैं। किसी देश काल को आधार बनाकर लिखे गए साहित्य में वह पूरी ईमानदारी और प्रामाणिकता से चित्रित होना चाहिए, तभी वह पूरी तरह इतिहास न होते हुए भी इतिहास का दर्जा प्राप्त करता है।

अर्चना ने अपने विभिन्न निजी स्रोतों से इस काम को सफलता से पूरा किया है। पहाड़ और पहाड़ की संवेदनशीलता को समझना चाहने वालों के लिए यह एक पठनीय रचना है। **–सं.**

जब क्लीवलैंड गुलाबलैंड हुआ

प्रस्तुति : डॉक्टर सुनीता द्विवेदी

"मैंने तेरी तान सुनी है
शांत विजन में सुमन-सुमन में
हर तरु-तृण में लय अनजान सुनी है।"

शायद कविता का सबसे बड़ा सत्य यही है– जो कहा नहीं जाता, वही सबसे अधिक सुनाई देता है। शुक्रवार, अप्रैल 10, 2026 को क्लीवलैंड में भी कुछ ऐसी ही सुहावनी संध्या रही। शब्द थे– पर केवल शब्द नहीं थे। स्वर थे– पर केवल ध्वनि नहीं थे। और जो था... उसे किसी एक नाम में बाँधना संभव नहीं था।

वह एक संध्या थी– पर धीरे-धीरे वह एक अनुभव बनती चली गई।

यह संध्या केवल एक आयोजन नहीं थी– यह महाकवि श्री गुलाब खंडेलवाल जी की 102वीं जयंती का वह अवसर था, जहाँ समय स्वयं ठहरकर अपनी ही यात्रा को निहारता हुआ प्रतीत हो रहा था।

कहते हैं, गुलाब की पहचान उसके रंग से नहीं, उसकी सुगंध से होती है। रंग क्षणिक हो सकते हैं, पर सुगंध... स्मृति बनकर ठहर जाती है। गुलाब जी का काव्य भी कुछ ऐसा ही है। वह पंक्तियों में बंधा हुआ साहित्य नहीं, बल्कि एक ऐसी अनुभूति है, जो समय के साथ सूखती नहीं– बस रूप बदलती है।

उस शाम, क्लीवलैंड की मिट्टी में वही सुगंध फिर से जागी थी। प्रवास में भाषा का स्वर अक्सर धीमा पड़ जाता है। वह घर की दीवारों तक सीमित हो जाती है, त्यौहारों तक सिमट जाती है, या स्मृतियों में ठहर जाती है। पर कभी-कभी– कोई एक उपस्थिति

उस भाषा को फिर से साँस दे देती है। गुलाब जी की उपस्थिति ऐसी ही रही है।

भारत से दूर, एक भिन्न भूगोल में, जहाँ जीवन की गति और प्राथमिकताएँ अलग हैं– वहाँ हिंदी केवल बोली नहीं गई, वो जीवंत हो उठी। इस दृष्टि से, क्लीवलैंड,केवल एक शहर नहीं– एक "गुलाब-भूमि" बन गया है। यह संध्या उसी जीवंत चेतना का उत्सव थी।

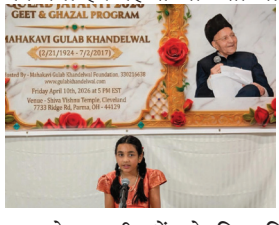

ग्रेटर क्लीवलैंड के शिव-विष्णु मंदिर का सभागार भरा हुआ था– पर केवल लोगों से नहीं, एक साझा अनुभव से। दर्शकों और प्रस्तुतकर्ताओं में विविध आयु के चेहरे थे– बालपन की सहज जिज्ञासा से लेकर अनुभव की शांत परिपक्वता तक– जैसे आठ से अस्सी तक की पूरी यात्रा एक ही छत के नीचे बैठी हो, और यह अनुभव केवल उस सभागार तक सीमित नहीं रहा। भारत और अन्य स्थानों से समय-सीमाओं को पार करते हुए, सैकड़ों मन इस सुगंध से जुड़ते चले गए– मानो एक ही क्षण, कई दिशाओं में एक साथ घटित हो रहा हो।

मंच पर प्रस्तुतियाँ थीं गीत, ग़ज़ल, भक्तिगीत– पर वे अपने-अपने सीमित रूपों में नहीं रहीं।

कविता, स्वर बन गई, स्वर लय में ढल गया और लय– एक मनभावन अनुभूति में।

कहीं भक्ति थी, जो आत्मा को भीतर तक शांत कर रही थी, कहीं ग़ज़ल थी, जो दिल की अनकही परतों को खोल रही थी और इन सबके बीच– एक अदृश्य सूत्र था, जो सबको जोड़ रहा था। वह सूत्र था– कवि की उपस्थिति।

महाकवि गुलाब खंडेलवाल–एक ऐसा नाम, जिसे केवल उनकी रचनाओं से नहीं, उनकी व्यापकता से समझना होगा जो देश, काल और परिस्थिति से परे रही। गीत... ग़ज़ल... रुबाई... सॉनेट...अभिव्यक्ति की कोई विधा उनसे अछूती नहीं रही। पर उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह नहीं थी कि उन्होंने कितना लिखा, बल्कि यह थी कि उन्होंने हर शब्द को जिया।

उनकी कविता में एक सहजता है, एक गहराई है, जो बोझिल नहीं होती और एक लय है, जो पाठक को नहीं, श्रोता को आमंत्रित करती है। इसी उत्कृष्ट साहित्य के कारण उन्हें "साहित्य वाचस्पति" "कवि सम्राट" "आज के तुलसीदास" आदि अनेक अलंकरणों से सम्मानित किया गया। उनके साहित्य पर 9 विद्यार्थियों को PhD की उपाधि प्रदान की गई है।

इस संध्या का महत्वपूर्ण आयाम था उस सुगंध को सहेजने का प्रयास। पर सुगंध कहाँ अपने आप ठहरती है? उसे सहेजने वाले हाथ भी आवश्यक होते हैं। वर्षों से खंडेलवाल परिवार अपने साथ एक समर्पित प्रयास लिए इस सुगंध को संवार रहा है और उसे अगली पीढ़ियों तक पहुँचा रहा है। इस कार्यक्रम में गुलाब जी की प्रपौत्री– विद्या खंडेलवाल ने उनकी कविता का गायन कर ये सिद्ध कर दिया कि यह अनमोल साहित्यिक धरोहर सुरक्षित ही नहीं, अपितु अग्रसरित भी है। इस धरोहर का यह संरक्षण एक निरंतर साधना है। जिसे महाकवि गुलाब खंडेलवाल फाउंडेशन उनकी विरासत को संरक्षित और प्रसारित करने का कार्य समर्पित भाव से कर रहा है जैसे "उनकी अमर कृतियों को संरक्षित करना, हिंदी भाषा के अध्ययन और प्रसार को प्रोत्साहित करना और नई पीढ़ी के रचनाकारों को प्रेरित करना"।

इसी दिशा में, वर्षों पूर्व नगर के इतिहासकार और वृत्तचित्र निर्माता माइल्स रीड ने गुलाब जी की काव्य-यात्रा पर एक सुन्दर वृत्तचित्र बनाया था जो यूट्यूब पर उपलब्ध है। उनके इस अनमोल एवं विशिष्ट योगदान के लिए उन्हें गुलाब फाउंडेशन की ओर से डॉक्टर आनंद व डॉक्टर शोभा खंडेलवाल ने सम्मानित किया।

आज जब समय की गति तेज है, तो यह संतोष भी है कि यह साहित्य केवल स्मृतियों में नहीं,बल्कि डिजिटल संसार में भी सहेजा जा रहा है। गुलाब जी की कृतियां उनके वेबसाइट www.gulabkhandelwal.com पर सुलभ हैं जहाँ कोई भी, कभी भी, उनकी काव्य सुरभि का आनंद ले सकता है। ऐसे अमूल्य दस्तावेज़ों को सहज कर रखना उनकी साहित्यिक यात्रा का संरक्षण है।

इस काव्य-संध्या में नगर के आठ से अस्सी वर्ष के कलाकारों ने अत्यधिक उत्साह से गुलाबजी की कृतियों को संगीतबद्ध कर अपनी सुन्दर प्रस्तुतियां दी जो दर्शकों के हृदय में मधुर स्मृतियों के रूप में बस गईं। कार्यक्रम के अंत में गुलाब फाउंडेशन की अध्यक्षा और गुलाब जी की पुत्रवधू डॉक्टर शोभा खंडेलवाल ने धन्यवाद और विनम्र आभार व्यक्त किया।

कार्यक्रम से लौटते दर्शकों के मन में एक विचार चल रहा था कि धरोहर की संरक्षित करने के साथ साथ उसे जीवंत रखना भी बहुत ही आवश्यक है। तभी गुलाब की वो मनमोहक सुरभि नए शब्दों, नए विचारों, नई सुगंध के साथ चहुँ ओर प्रसरित होगी, फिर कहीं सहेजी जाएगी और सदैव जीवंत रहेगी।

इस कार्यक्रम का संचालन रश्मि चोपड़ा और सुनीता द्विवेदी ने किया। ❐

विभिन्न शाखाओं द्वारा आयोजित कार्यक्रम

PRINTED VISHWA - ISSN 25721550
ONLINE e-VISHWA - ISSN 25721569

स्वतंत्रता का दीपक

गोपाल सिंह नेपाली

घोर अंधकार हो, चल रही बयार हो,
आज द्वार द्वार पर यह दिया बुझे नहीं।
यह निशीथ का दिया ला रहा विहान है।

शक्ति का दिया हुआ, शक्ति को दिया हुआ,
भक्ति से दिया हुआ, यह स्वतंत्रता-दिया,
रुक रही न नाव हो, जोर का बहाव हो,
आज गंगधार पर यह दिया बुझे नहीं!
यह स्वदेश का दिया प्राण के समान है!

यह अतीत कल्पना, यह विनीत प्रार्थना,
यह पुनीत भावना, यह अनंत साधना,
शांति हो, अशांति हो, युद्ध, संधि, क्रांति हो,
तीर पर, कछार पर, यह दिया बुझे नहीं!
देश पर, समाज पर, ज्योति का वितान है!

तीन चार फूल है, आसपास धूल है,
बाँस है, बबूल है, घास के दुकूल है,
वायु भी हिलोर से, फूँक दे, झकोर दे,
कब्र पर, मजार पर, यह दिया बुझे नहीं!
यह किसी शहीद का पुण्य प्राणदान है!

झूम झूम बदलियाँ, चूम चूम बिजलियाँ
आँधियाँ उठा रहीं, हलचलें मचा रहीं!
लड़ रहा स्वदेश हो, शांति का न लेश हो
क्षुद्र जीत हार पर, यह दिया बुझे नहीं!
यह स्वतंत्र भावना का स्वतंत्र गान है!